आरती और अंगारे

सन् १९५०-'५७ में

लिखित

बच्चन की अन्य रचनाएं

१ मैकबेथ (अनुवाद)
२ धार के इधर उधर
३ प्रणय पत्रिका
४ मिलन यामिनी
५ खादी के फूल
६ सूत की माला
७ बंगाल का काल
८ हलाहल
९ सतरंगिनी
१० आकुल अंतर
११ एकांत संगीत
१२ निशा निमंत्रण
१३ मधुकलश
१४ मधुबाला
१५ मधुशाला
१६ खैयाम की मधुशाला (अनुवाद)
१७ प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग } कविताएँ
१८ प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग } कविताएँ
१९ प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियां
२० बच्चन के साथ क्षण भर (संचयन)
२१ सोपान (संकलन)

मधुशाला का अंग्रेजी और बंगाल का काल का बँगला अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

आरती और अंगारे

बच्चन

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

मूल्य — चार रुपये

प्रथम संस्करण — मार्च १९५८

आवरण — नरेन्द्र श्रीवास्तव

प्रकाशक — राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मुद्रक — हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

तेजी को

'अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा'

अपने पाठकों से

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने कहा था कि प्रत्येक कवि को वह विशेष अभिरुचि उत्पन्न करनी होती है जिससे उसकी कविता का आनंद लिया जा सके। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे अपने पाठकों और श्रोताओं का एक वर्ग तैयार करना पड़ता है। वह विशेष अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए कवि अपनी कविता के अतिरिक्त किन और उपकरणों का उपयोग कर सकता है, इसपर मैं अपना दिमाग दौड़ा सकता हूँ। उदाहरणार्थ, वह अपनी भूमिका अथवा लेखों के द्वारा यह बता सकता है कि उसकी रचना उसके पूर्ववर्तियों अथवा समकालीनों से किन अर्थों में भिन्न है, उसने कौन-से विषय अपनाए हैं, कौन छोड़े हैं, किस प्रकार की भाषा का उपयोग किया है, किस प्रकार की तक्नीक का प्रयोग किया है, जीवन की किन मान्यताओं को मुखरित करने के लिए वह लिखता है और अपने पाठकों अथवा श्रोताओं पर किस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। यह सब करने का साहस वही कर सकता है जिसमें अपने कवि के प्रति अदम्य विश्वास हो, दुस्साहसी काव्य के क्षेत्र में भी होते हैं। वर्ड्सवर्थ में यह विश्वास था और उन्होंने इस प्रकार का बहुत कुछ लिखा भी। लिखने की आवश्यकता थी और उसके द्वारा वे अपनी कविता के प्रेमियों का एक वर्ग बनाने में सफल हुए। हिंदी कवियों में यह विश्वास श्री सुमित्रानंदन पंत में था और उन्होंने अपनी प्रथम कृति 'पल्लव' ('उच्छ्वास' नाम्नी लघु पुस्तिका तो प्राय मित्रों में बाटने के लिए खानगी तौर पर छपाई गई थी) की भूमिका से कुछ इसी प्रकार का कार्य किया।

मुझे अपने कवि में विश्वास कभी नहीं था, आज भी नहीं है, कभी आगे भी हो सकेगा, इसमें संदेह है। मन स्थितियों और परिस्थितियों के प्रति जिस प्रकार की मेरी प्रतिक्रिया होती है और प्रतिक्रिया होने पर जिस

प्रकार की अभिव्यक्ति मैं उसे देता हूँ, यदि वह कविया की सी है तो मैं कवि हूँ, यदि वह अभिव्यक्ति कविता-सी है तो जो मैं लिखता हूँ वह कविता है। इसे परपरा से चली आती हुई कविता के प्रति मेरी आस्था भर न समझा जाय। जब मैंने लिखा था

'क्या कवि कहकर ससार मुझे अपनाए,
म दुनिया का हूँ एक नया दीवाना।'

(मधबाला)

या

'कविता कहकर जग ने तेरे क्रदन का उपहास किया।

(निशा निमत्रण)

अथवा

'कवियो की श्रेणी से अबसे मेरा नाम हटा दो।'

(मिलन यामिनी)

या

'मने ऐसा कुछ कविया से सुन रक्खा था'-आदि आदि।

(आरती और अगार)

तब अपने मन का एक सहज भाव ही प्रतिध्वनित कर रहा था। ये प्रतिक्रियाएँ ये अभिव्यक्तिया मेरे लिए स्वाभाविक हैं। ये क्रियाएँ मेरे सामान्य मानव के ही न्रतगत है, इतनी निकटता से, इतनी अनिवायता स कि मरे साथ इनका सगति बिठलाने के लिए किसीको मुझे कवि की अतिरिक्त सत्ता देने की आवश्यकता नही, मेरे फूट पडने को छद बनाने, मरे रोदन, गायन, क्रन्दन--मर उद्गारा को कविता कहने की जरूरत नही।

बाबा तुलसीदास ने जब लिखा था कि 'कवि न होउँ' तो मेरी समझ में यह केवल नम्रता प्रदर्शन न था। भक्ति से अन्तर भर जाने पर राम-गुन-गान उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया हो गइ होगी। और उन्हें सचमुच लगा होगा कि मैं कवि नही हूँ जो कुछ लिख रहा हूँ वह तो मर

सहज मानव का सहज काम है। खैर, बड़ों की बात बड़े जानें। मैंने अपनी अनुभूति आपको बता दी।

तब जैसे मैं हूँ, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति है। मैं यह कहने नहीं जाता कि मैं दूसरों से कितना भिन्न हूँ, कितना उनके समान हूँ मैंने जीवन में क्या अपनाया है, क्या छोड़ा है, कैसा मेरा रहन-सहन है, बोल-चाल है, बात-व्यवहार है, क्या मेरे श्रेय प्रेय हैं जो मेरे चारों तरफ हैं, उनसे मैं क्या पाना चाहता हूँ, उन्हें क्या देना चाहता हूँ, उनसे अपने किन विचार भावों का आदान प्रदान करना चाहता हूँ। अंग्रेजी में कहना चाहूँगा, 'आई लिव देम।' मैं यह सब बरतता हूँ। इन सब चीजों का सम्मिलित नाम है मेरा व्यक्तित्व। मेरी अभिव्यक्ति का भी एक व्यक्तित्व है।

तब जैसे मैंने अपने व्यक्तित्व से, अपनी संपूर्ण इकाई से अपने लिए 'अरि, मित्र, उदासी' बनाए हैं, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति भी बनाए। यदि मैं समाज के बीच अपने लिए कोई अभिरुचि जगा सका हूँ तो मेरी अभिव्यक्ति भी जगाए।

इसी आस्था से अपनी अभिव्यक्ति—अपनी कविता—के अतिरिक्त अन्य किन्हीं उपकरणों का आश्रय लेने की न मैंने कभी बात सोची और न मुझे इसकी आवश्यकता पड़ी।

यदा-कदा बाल प्रयासों की गणना न करूँ तो चार-पांच वर्षों के सतत अभ्यास के पश्चात् १९३३ में मैंने 'मधुशाला' लिखी और उसके साथ ही मैंने अपने श्रोताओं और पाठकों का वर्ग तैयार पाया। वर्ड्सवर्थ या श्री सुमित्रानंदन पंत-जैसे कवियों में अपने कवि के प्रति मुझसे कहीं अधिक आत्म विश्वास भले ही रहा हो, भाग्यवान मैं उनसे कहीं अधिक था। उनसे कहीं अधिक मुझे अपनी कविता में विश्वास था, क्योंकि मुझे अपने में, अपने मानव में विश्वास था। और अगर कुछ उस कविता के शत्रु बने, कुछ उससे उदासीन रहे तो इसपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मेरे भी शत्रु हैं, मुझसे भी उदासीन रहनेवाले लोग हैं। सजीव व्यक्तित्व और सजीव कवित्व के प्रति प्रायः इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। निर्जीवों का

उपेक्षा की जाती है।

और न मेरा व्यक्तित्व ही सुस्थिर है और न मेरा कवित्व ही। दोना का विकास होता रहा है। पर, जहा मेरे कल का व्यक्तित्व मेरे आज के व्यक्तित्व मे समा गया है और उसकी अलग कोई सत्ता नही रह गई, वहा मेरी कल की कविता भी मौजूद है और आज की भी मौजूद है। जैसे मेरे कल के व्यक्तित्व में आज का व्यक्तित्व बीज रूप से वतमान था, जैसे मेरे आज के व्यक्तित्व में मेरे कल का व्यक्तित्व भी समाया है, वैसे ही 'मधुशाला' में भी 'आरती का कुछ प्रकाश और 'अगारे' की कुछ चिन गारिया मौजूद थी और 'आरती और अगारे' में 'मधुशाला' का रग राग किसी न किसी रूप में समाया है और इसी प्रकार मेरी आगे की रचना में भी 'आरती' का कुछ धूप और 'अगारे का कुछ ताप रहेगा। मेरी प्रथम रचना की क्षमताएँ—इनमें शक्तिया और कमजोरिया दोना सम्मिलित है—मेरी अतिम रचना ही सिद्ध कर सकेगी मेरी अतिम रचना ही बता एगी कि मेरी प्रथम रचना में क्या सभावनाएँ थी। नाम प्रामगिक है, सिद्धात को अमूत होने से बचाने के लिए। कहने का मतलब है, जैसे मेरा जीवन सागिक (आरगेनिक) है वैसे ही मेरा कविता भी है।

व्यक्ति का विकास शून्य में नही होता, समाज में होता है। समाज का बडा व्यापक अर्थ है। यह और बात है कि कुछ लोग समाज को समझते है, किसान-मजदूर सभा। मैं यह माननेवाला हूँ कि समाज से पलायन की प्रवृत्ति भी समाज में रहकर जागती है। मेरा व्यक्ति भी समाज में विकसित हुआ है और मेरी अभिव्यक्ति भी समाज में विकसित हुई है। और दोना ने जो रूप आज लिया है—चेतन और अवचेतन कारणा से—वह विकास की एक दिशा है। इससे भिन्न दिशाएँ भी हो सकती हैं और है भी, और इसे मानने का मेरे पास कोई कारण नही कि मेरा विकास अद्वितीय है। तब मेरा ही तरह बहुता का विकास हो सकता है मेरी ही-सी मिलती-जुलती दिशा में। मैं उन बहुतो को देखता रहा हूँ और वे मुझे देखते रहे हैं और हमने विचार-भाव अनुभव।

के पारस्परिक आदान-प्रदान से एक दूसरे से प्रेरणा ली है, एक दूसरे को प्रोत्साहन दिया है। इसमें मेरी अभिव्यक्ति भी एक साधन रही है, शायद सब साधनों में अधिक प्रमुख और मुखर भी।

आप मेरे पाठक हैं तो मैं यह मान लेता हूँ कि आपने मेरी अभिव्यक्ति को उसकी साधारणता-स्वाभाविकता, उसके व्यक्तित्व आकर्षण उसकी सजीवता-मार्मिकता और उससे सहज एवं सम अनुभूति के कारण स्वीकार किया है। यानी आपने उसे वैसे ही स्वीकार किया है जैसे मेरे मित्र मुझे स्वीकार करते हैं।

यह तो केवल भूमिका हुई। मेरी अभिव्यक्ति और आपमें जो संबंध है उसे मुझे बदलना नहीं—उसके बढ़ने घटने के लिए मैं एक को ही जिम्मेदार नहीं समझूंगा। बहरहाल, वह जैसा है उससे मुझे पूरा संतोष है। बहुतों को यह ईर्ष्या का विषय भी है। कभी कभी जीवन में अपने संबंधों के प्रति सचेत होने की भी आवश्यकता होती है। इन पंक्तियों से आपका कुछ और विश्वास पा और अपने में कुछ और आत्म विश्वास जगा आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।

अपनी कविताओं का एक नया संग्रह आपके सामने रख रहा हूँ। इनमें से बहुत से गीत समय-समय पर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने इन्हें पढ़ा होगा और अपनी तरह से आपकी प्रतिक्रिया हुई होगी। मैं प्रायः गीत ही लिखता रहा हूँ। गीतों की एक अपनी इकाई होती है—भावों, विचारों की, और एक हद तक अभिव्यक्ति के उपकरणों की भी, और उनका आनंद लेने के लिए किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक गीत को स्व-स्वतंत्र अपराश्रित और अपने में ही परिपूर्ण मानकर प्रायः पढ़ा या गाया जाता है और उसका रस लिया जाता है। अब यह गीतकार का काम है कि गीतों की परिमित परिधि के भीतर ही भावों का उद्रेक और विकास कर उन्हें वांछित परिणति पर पहुँचा दे। आप कह सकते हैं कि अगर ऐसी बात है तो इस प्रकार इन गीतों की पेशबंदी करने की जरूरत आपको क्या हुई?

अगर आपको मेरी कविता से प्रेम है तो आपने मेरे पिछले गीत-संग्रह भी देखे होंगे जैसे निशानिमंत्रण, सतरंगिनी, मिलन-यामिनी आदि। ये हैं तो गीत-संग्रह पर उनको मैं केवल गीत-संग्रह नहीं मानता, आपने भी ऐसा नहीं माना होगा। इन संग्रहों में एकसूत्रता है, भावना, और अभिव्यक्ति के उपकरणों की भी एक बड़ी इकाई है जो सबपर छाई है, जो प्रत्येक गीत के स्वच्छंद व्यक्तित्व के बावजूद सबको एक दूसरे से अनिवार्य रूप में बँधा या जुड़ा सिद्ध करता है। कारण इसका यह है कि किन्हीं भावनाओं ने मुझे कुछ समय तक अभिभूत कर रक्खा है और इस बीच लिखे गीतों में एक प्रकार की समानता आ गई है। शायद परिस्थितियाँ मेरे अनुकूल होतीं तो उस भावना से मैं कोई लंबी कविता या खंड काव्य जैसी कोई चीज लिख सकता था—महाकाव्य के नाम से ही मैं आतंकित हो उठता हूँ। अक्सर मेरे मित्रों ने मुझसे कहा भी है कि तुम कोई लंबी कविता क्यों नहीं लिखते, तुममें इसकी क्षमता है। शायद उनका कहना ठीक भी हो।

मेरा अपना ख्याल है कि लंबी कविता लिखने के लिए कवि को अपने समय का मालिक होना चाहिए। कविता लिखने बैठे तो उसकी आँख न घड़ी पर हो और न कलेंडर पर। मुझे ऐसा सुयोग नहीं मिल सका। मुझे अपने और अपने परिवार के लिए रोटी कपड़ा जुटाने के लिए कई तरह के व्यापार करने पड़े हैं। लिखने बैठा हूँ, और लो, वक्त हो गया है कि अब कचहरी पहुँचना है, अब युनिवर्सिटी पहुँचना है, अब परेड पर हाजिर होना है, अब दफ्तर जाना है। प्रेरणा की घड़ियों पर घंटे मिनट की सुइयों का शासन नहीं चलता, और जीवन की वास्तविकताएँ प्रेरणा की घड़ियों के प्रति न किसी प्रकार की उदारता दिखलाती हैं न उनको किसी तरह की छूट देती हैं। यह नहीं हो सकता कि ६ बजकर ठीक ३० मिनट पर प्रेरणा के ग्रामोफोन की सुई हटा दी जाय और ४ बजकर ३० मिनट पर जहाँ से उठाई थी वहीं फिर लगा दी जाय। प्रेरणा की सुई हटी तो फिर हटी। मैंने तो उसे एकबार हटाकर फिर उसी जगह लगाना असम्भव

पाया है ।

पर मैं जीवन की वास्तविकताओं का आदर करता हूँ, उन्हें प्यार भी करता हूँ । कविता इसलिए नहीं लिखी कि और कुछ कर नहीं सकता या करना नहीं चाहता

'सब जगह असमर्थ हूँ मैं इस वजह से तो नहीं तेरा हुआ हूँ ।'

वास्तविकताएँ न हों तो जीवन का कोई अर्थ नहीं । कविता के बिना जीवन का अर्थ हो सकता है । लिखने के लिए मैं नहीं जीता, जीवन प्रशस्त करने के लिए लिखता हूँ । मगर मुझसे कोई कहे कि जाओ आज से तुम्हारी सारी फिक्रें मैंने अपने ऊपर ले ली, तुम आराम से लिखो, तो मेरा लिखना बंद हो जायगा । कवि का यही चित्र मेरे मन को भाता है

'बोझ सिर पर, कंठ में स्वर'

हमारी अवधी में एक कहावत प्रचलित है, 'पूतौ मीत, भतारौ मीत किरिया केकर खाऊँ' । अर्थात् पुत्र भी प्यारा है, पति भी प्यारा है, किसकी कसम खाऊँ । जीवन की वास्तविकताएँ भी प्यारी हैं, प्रेरणा की घड़ियाँ भी प्यारी हैं, किनको बलिदान किया जाय । मैंने एक समझौता कर लिया है, और बहुत दिनों से उसे चला रहा हूँ । मैंने समझ लिया था कि लंबी रचना मेरे बस की नहीं । क्यों न अपनी उस भावना को, जो लंबी रचना माँगती है, इस प्रकार विघटित कर दिया जाय कि उसके एक एक खंड को लेकर छोटी-छोटी रचना कर दी जाय । घनी वास्तविकताओं के बीच भी घंटे-दो घंटे का वक्त तो ऐसा निकाला ही जा सकता है कि उसमें इस छोटी सी रचना को पूरा कर दिया जाय । मेरे संग्रहों में गीतों की अलग अलग इकाई और उनकी पारस्परिक संबद्धता का शायद यही राज है ।

या एडगर एलेन पो के इस सिद्धांत में भी मुझे कुछ सत्यता प्रतीत होती है कि कविता तो लंबी हो ही नहीं सकती, क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क तीव्र भावनाओं के आवेग का अधिक समय तक नहीं झेल सकता। जब कविता लंबी होती है तब भावनाएँ अपनी गंभीरता से हटकर गिर

पट हो जाती है । एक और अंग्रेज लेखक का कथन मुझे स्मरण है—उसका नाम भूल गया हूँ—कि प्रत्येक लंबी कविता अनेक छोटी कविताओं का धारावाहिक रूप है। संभव है, मेरी रचनाओं के पीछे मेरी सीमाएँ ही नहीं, इस प्रकार की कोई धारणा भी अनजाने काम कर रही हो। मैंने कभी इसका विशेष विश्लेषण नहीं किया।

'मिलन यामिनी' प्रकाशित कर देने के पश्चात मेरे मन में कुछ ऐसे भावों विचारों का मंथन आरंभ हुआ कि बहुत दिनों तक मैं यह निश्चय ही न कर पाया कि उनकी अभिव्यक्ति किस तरह से आरंभ करूँ। मूल बात मैं क्या कहना चाहता हूँ, यह तो स्पष्ट थी। वह अभी नहीं बताऊँगा। पर जब उसकी अभिव्यक्ति के रूप की कल्पना की तो मुझे लगा कि जैसे किसी महान काव्य (महाकाव्य नहीं) के प्राणों की धड़कन सुन रहा हूँ। इससे मैं डरकर भागा। इसे भूल जाने के लिए मैंने कई उपाय किए। धड़कन बंद नहीं हुई। मैं उसे अपनी छाती में ले गया तो मेरा विस्फोट ही हो जायगा। और तब वही समझौता, वही विघटन की रीति काम आई। गीतों से ही उसको व्यक्त करूँगा, पर इसके लिए ढाई-तीन सौ गीत लिखने होंगे।

पचीस-तीस गीत लिखे थे कि मैं इंग्लैंड चला गया। अपनी डाक्टरेट के संबंध में वहाँ बहुत कुछ पढ़ना लिखना था। रमणीक देश था, बहुत कुछ देखना-करना भी था। फिर भी वहाँ सौ से ऊपर कविताएँ लिखीं, जिनमें कुछ मुक्त छंद की भी थीं और यह स्वाभाविक ही है कि इन बहुत सी कविताओं में मेरे प्रवास की अनुभूति और वातावरण की छाप पड़ी है—कहाँ और कैसे, इसे देखना मेरी समझ में, कल्पना प्रवण पाठक के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। मेरे प्रवास में ये मेरे गीत देश की पत्रिकाओं में छपते रहे।

यह भी सोच लिया था कि इस बड़े संग्रह का नाम क्या दिया जाय। बाबा तुलसीदास के गीत संग्रह 'विनय पत्रिका' से यह प्रेरणा ली कि इसे 'प्रणय पत्रिका' कहा जाय। उसका बीज मंत्र विराग तो इसका राग

विराग की उस आकाशी स्थिति को तो विरले सत ही पा सकते हैं, पर अपनी इस धरती पर जो बहुरग अनुभूतियाँ हैं वे भी हमारी आस्था मागती है और हमारे कठो से मुखरित होने का अधिकार रखती हैं और उन्ही का वाणी देने का प्रयास इन गीतो में किया गया। पर शायद एक स्थिति एसी भी है जहाँ राग और विराग एकाकार हो जाते हैं और दोना मिल कर एक ऐसे जीवन की सवद्धना करते है जो दोनो से परे है।

'प्रणय पत्रिका' शीर्षक से ही कई गीत पत्र-पत्रिकाओ में निकले। इग्लैंड से लौटने पर गीता को देखकर, जिनको सख्या अब सौ से ऊपर पहुँच चुकी थी, मुझे यह आभास हुआ कि अभी जो कुछ कहना चाहिए था उसका एक भाग ही कहा गया है, और मैंने कविताओ को सग्रह का रूप देने का विचार छोड दिया। परन्तु, मेरे बहुत से पाठक जो गीतो को पत्रो में देख चुके थे, उन्हें सग्रह रूप में देखने को उत्सुक थे। इसलिए ५६ गीता का एक सग्रह मैंने 'प्रणय पत्रिका' के नाम से प्रकाशित कर दिया। इग्लैंड से लौटकर मैं बहुत अस्वस्थ हो गया था। पुस्तक ज्यो त्यो प्रेस में दे दी गई। एक मेरे विद्यार्थी ने चयन किया, मैंने गिनती की चार पक्तियाँ भूमिका के नाम पर लिखी। वास्तव में जो बातें मै आज कह रहा हूँ, वे मुझे उस समय कहनी थी।

अब सौ गीता का यह सग्रह छप रहा है। ये सब 'प्रणय पत्रिका' की कल्पना के ही अतगत हैं। कभी मेरे मन में आया था कि इसे 'प्रणय पत्रिका-दूसरा भाग' कहा जाय। फिर इस सग्रह को एक अलग सत्ता देने के विचार ने इसे 'आरती और अगारे' नाम दे दिया गया। मेरी कल्पना की 'प्रणय पत्रिका' अब भी पूरी नही है। जो अभी और कुछ कहने को है उसके लिए म सौ-सवा सौ गीत और लिखूँ तो शायद कह सकू कि मैंने अपनी कल्पना के प्रति न्याय किया। इन गीतो का मैं कब तक लिख सकूगा मैं नही जानता। शेष गीत लिखे जा सकें तो सबको मैं फिर से एक विशेष क्रम में रखकर एक नाम से ही पुकारना चाहूँगा।

१९५० में जो कल्पना मेरे मन म उठी थी, इन सात वर्षों में वह

विकसित भी होती रही है। आगे चार पाच वर्षों तक, जब मैं उसे पूर्णतया अभिव्यक्त करने की आशा रखता हूँ, इसका क्या रूप हो जायगा, मैं स्वय नही जानता।

आपने कभी किसी चित्रकार को चित्र बनाते देखा है, उदाहरणार्थ किसी मनुष्य का चित्र ? वह ऐसा नही करता कि पहले नख बनाए, फिर उँगलियां, फिर पाव फिर पिंडुलियां, घुटने और उसी क्रम से चोटी तक पहुँच जाय। वह अपनी तूलिका से कभी एक रेखा पाव की बनाता है, कभी सिर की, कभी हाथ की और इन रेखाओं में कोई क्रम, कोई सगति, कोई विकास देखना तब तक सभव नही जब तक चित्रकार की कल्पना न जान ली जाय। 'प्रणय पत्रिका' और 'आरती और अगारे' के गीत उन्हीं रेखाओं के समान हैं जो अभी अपने स्थान पर भी नही। मुझे एक दूसरा रूपक सूझ रहा है जो अधिक समीचीन होगा। आपने देखा होगा, बच्चे एक तरह का खेल खेलते हैं। बाजारों में लकडी या गत्ते के ऐसे टुकडो के बक्स मिलते हैं जिनको अगर ठीक से जोडा जाय तो किसी आदमी या जानवर की आकृति बन जाती है। इन टुकडों का ढेरी में रख दिया जाय तो आदमी या जानवर का कोई आभास नही मिलता। मैं चाहूँगा कि मेरे गीत उन्ही टुकडों के समान समझे जायें। टुकडे तो बिल्कुल निरर्थक होगे। गीत होने के कारण प्रत्येक रचना अपना अलग अर्थ भी रखती है। जब तक मैं उनका क्रम स्थापित नही कर देता आपसे धीरज रखने की प्रार्थना कर सकता हूँ। 'विनय पत्रिका' का खाका आप अपने सामने रक्खें। मैंने 'प्रणय पत्रिका' का खाका कुछ कुछ वैसा ही रखने को सोचा है। जो भी गीत आपके सामने है, अगर आप चाहें तो, उनको एक नमूने के क्रम मे लगा सकते हैं। मैंने दोनो सग्रहों के गीतो का जो क्रम अपने लिए बनाया है उसमें मुझे अपनी कल्पना के रूप का कुछ आभास तो मिलता है, पर बहुत-सी खाली जगहें भी दिखाई देती हैं। मुझे इन्हें भरना बाकी है।

इन गीतो के बारे में मुझे सिर्फ दो एक बातें और कहनी हैं। ये गीत

हैं, इन्हें आँख से, मौन रहकर मत पढिए, इनको स्वर दीजिए, गाइए—कुछ गीत गेय नही हैं, उन्हें सस्वर पढिए, भावानुरूप स्वर से। किसीसे गवाकर या पढाकर सुनिए। यानी छपे हुए शब्दो की, जिसे अंग्रेजी में कहेंगे, 'साउंडिंग' की जानी चाहिए, उन्हें मुख से 'मुखर' किया जाना चाहिए। सब गीतो को एक सिरे से दूसरे सिरे तक न पढ जाइए। यह उपन्यास नही है। मैं तो कोई अच्छा गीत सुन लेता हूँ तो बहुत देर तक दूसरा नही सुन सकता। कोई गीत आपको विशेष प्रिय लगे तो उसे फिर फिर पढिए। अच्छा गीत दूसरी-तीसरी बार पढने पर अधिक अच्छा लगना चाहिए।

अत में एक आगाही। इस-उस कोने से आपको लोगो के ऐसे भी स्वर सुनाई देंगे कि अब गीतो का युग बीत गया है। आप अचरज मत कीजिएगा यदि ये लोग कल कहते सुने जाय कि अब हँसने-रोने का, प्रेम करने का, सघपरत होने का युग बीत गया है। आज जो ऐसी बातें कह रहे हैं उन्ही के बाप चाचा ने जब 'मधुशाला' निकली थी तो कहा था, यह मस्ती का राग अलापने का युग नही है, निशा निमत्रण' निकला तो कहा था, यह रोदन क्रदन का युग नही है, 'सतरगिनी' निकली तो कहा था, यह प्रेम के तराने उठाने का युग नही है, और उनके बेटो भतीजो ने 'प्रणय पत्रिका' निकली तो कहा, यह तो बीते युग की बातें हैं। मेरे पाठको ने इन तथा अन्य सग्रहो में जो सह एव सम अनुभूति पाई है उसने उनके इन फतवो को गलत ही साबित किया है।

'प्रणय पत्रिका' का प्रथम सस्करण समाप्त हो गया है। शीघ्र ही नया सस्करण छपेगा, और आप उसके और 'आरती और अगारे' के गीतो को मेरी एक ही कल्पना के अतगत मानकर उनका रस लीजिए। आगे के गीत म मेरे और तुम्हारे बीच' शीपक स लिखना चाहूँगा जो आपको भविष्य में पत्र पत्रिकाओ मे मिलेंगे।

विदेश मत्रालय,
नई दिल्ली।
१८ १२-१९५७

बच्चन

गीतो की प्रथम पक्ति-सूची

प्रथम पंक्ति | पृष्ठ

*विलियम बटलर इट्स पर टिप्पणी पृष्ठ २४३ पर देखें।

प्रथम पंक्ति | पृष्ठ

१

मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।
निद्रा के नीलम अबर मे
स्वप्न-श्वेत गज अरुण जलज ले
मेरे मन-तडाग मे उतरे,
लहरे उठ-उठ, गिर-गिर मचले,
हो जाए जब जल-कोलाहल
शात, कमल तल मे आरोपे,
और अतल से एक उठे सगीत गगनभेदी अविरामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

एलोरा - ऐरावत जैसे
भार पर्वताकार उठाए,
भारत की प्राचीन कला का,
सस्कृति का, वेपीठ झुकाए,
उसी तरह से नए हिंद की
नई जिंदगी, नई जवानी,
ताकत, मस्ती, हस्ती, बनने की मेरी वाणी हो कामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

धूलि उठा नित सिर पर धारे,
खोज करे उस रज के कण की,
जिसको छूकर ऊपर उठती
रूह रहित प्रतिमा पाहन की,

ढूह अगर मिट्टी के रोकें
राह ढहा दे क्रीडा में ही,

औ' अपनी रौ चले भले ही भूकें श्वान, करें बदनामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

गज को ग्राह मिला करते हैं
लेकिन इससे मत घबराए,
जग जिंदों से आशा करता
अपना बल परखें, परखाएँ,

बस न चले, सबकी सीमा है,
तो यह दृढकर, एक जगह पर
झुकना उठने से बढकर है,
झुकना उठने से भी दुष्कर,

हो समर्थ अतिम साहस कर कहने में, 'प्रभु, पाहि नमामी।'
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

२

कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूँगा मैं, माये !

अर्थ समझती बुद्धि जगाई,
शब्द समझते कान सयाने,
भाव समझता गह्वर अतर,
लय मे डूब-डूब अनजाने

जीवन के सब अग उभरते
कोई अद्भुत-सी निधि लेकर,

कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूँगा मैं, माये !

लय, जिसकी गति पर नभमडल
मे तारक दल देते फेरे,
नर्तन करती है छै ऋतुएँ,
आते-जाते साझ सबेरे,

हृदय प्रिया-प्रियतम के जिसपर
धडका करते आलिगन मे,

वह मेरे सुर के बस हो तो, उर उकसा लूगा मैं, माये !
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूगा मैं, माये !

काम-धाम से कब डरता मैं,
कब मिट्टी की निठुराई से,
पर यह काज नही सरता है
बस हाथो की चतुराई से,

सुरभि स्वर्ग से उतरा करती,
पवन उसे बिखराता फिरता,
बीज-वपन केवल तू कर दे, फूल हँसा लूगा मैं, माये!
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूगा मैं, माये!

मना किया सिर म लिखने को
जो, विधि ने उसको ही आँका,
नीरस को रसमय कर देना,
हो मेरी रसना का साका,
कवित,रसिक सुन तन मन धुनता
तो कवि ने एहसान किया क्या?
नयनो म घन बन तू छा जा, रस बरसा लूगा मैं, माये!
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूगा मैं, माये!

३

ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !
किस प्रभात का चपल पवन था
उसको छूकर आया,
जो उसकी सुकुमार सुरभि ने
तुमको विकल बनाया ?
किन तारो से उसके स्वर की
तुमने प्रतिध्वनि पाई ?—
ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !—
जो तुमने गिरि-वन मे जप-तप-
कर उसको मनुहारा,
देवपुरी के झूलो पर से
भू की सेज उतारा।
आर्य, तुम्ही ने वाणी का
कौमार्य अछूता जाना,
तुम सर्वप्रथम उस मुग्धा के अधिनायक !
ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !
ओसकणो से व्योम नगो तक
सार, शुभद, सुखदायी—
सब मन-तन्त्री पर झंकृतकर
तुमने तान उठाई,

सामगान गाए, जिसपर
युग-कल्प रहे लहराते,
ओ, शब्द-सुरों के पहले भाग्य-विधायक!
ओ, वेदों की स्वर्गीय गिरा के गायक!

एक वेदना, एक व्यथा का,
एक दर्द का मारा,
जो उर कुछ कहने को आतुर
वह भी रक्त तुम्हारा,
अक्षय, अमर तुम्हारी निधि में
बालक सा घबराया,
क्या मांगू अपने गीत लयों के लायक।
ओ, वेदों की स्वर्गीय गिरा के गायक!

४

तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।

बन पवत पर फिरते छिपते
बटमारो का नायक,
जपकर जिसको बन जाता है
महाकाव्य का गायक,

जो कि रहेगा थिर जबतक हिम-
श्रृ ग, लहरमय गगा,

सप्तर्षि सुझाया राजमत्र दुहराऊँ ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।

क्रौच मिथुन की पीर तीर-सी
धँसी तुम्हारे उर मे,
बीज रूप यह गाथा थी जो
घटी अयोध्यापुर मे,

और घटित होती हर अतर
मे यह रामकहानी,

किस युग पीडा को उर के बीच बसाऊँ ?
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।

महाराग अब कहाँ भाग ले
जिसमें अग जग सारा,

यही गनीमत है जाग्रत है
मानव का एकतारा,

चतुर गुनी उसपर भी जीवन
कुछ मुखरित कर लेते,
रस अर्थ रहित ध्वनियो मे मैं क्या गाऊँ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ।

ओ, रस के घन सघन, छद के
निर्भर श्रवण सुहावन,
अर्थों की सरिता, वर्णों के
करुणागार सनातन,

पैठ कहा मजुल मणियो मे,
अपना जन्म सराहूँ,
क्षण वैठ किनारे सीप जुटा जो पाऊँ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ।

५

'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !
तुम बोले तो लगा कि जैसे
जाग हिमाचल बोला,
तुम बोले तो लगा कि जैसे
कठ सिंधु ने खोला,
सिर गिरि की चोटी-सा ऊँचा,
उर अवुधि सा गहरा,
भावना-ज्ञान के तुम समान अभिभावक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

लगे रहे किस वन मे, कितने
युग किस तप-साधन मे ? —
जीभ निकल आई पत्तो की
जगह गहन कानन मे,
यह अरण्य-उद्घोष लेखनी-
बद्ध कौन कर पाता,
मिलते न अगर लेखक अनन्य गणनायक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

तीन लोक के देव-दनुज-
मनुजो की जीवन गाथा,

सिद्ध, तुम्हारे बिना कौन यह
एक साथ कह पाता,
'यन्नभारते तन्नभारते—'
सत्य नही इतना ही,
वह गेय नही, तुम गा न सके जो, गायक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

है अपार कातार गलो से
बेशुमार जब गाता,
अचरज क्या जो एक विहगम—
शिशु गाते शरमाता,
डूबें तो उस ठौर जहाँ से
मुट्ठी में कुछ आए,
छूटा क्या तुमसे, भवसागर-अवगाहक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

६

ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !
तुम विक्रम नवरत्नो मे थे,
यह इतिहास पुराना,
पर अपने सच्चे राजा को
अब जग ने पहचाना,
तुम थे वह आदित्य, नवग्रह
जिसके देते फेरे,
तुमसे लज्जित शत विक्रम के सिंहासन।
ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !

तुमने किस जादू के बिरवे
से वह लकडी काटी,
छूकर जिसको गुण-स्वभाव तज
काल, नियम, परिपाटी,
बोली प्रकृति, जगे मृत मूर्च्छित
रघु पुरु वश पुरातन,
गधव, अप्सरा, यक्ष, यक्षिणी, सुरगण।
ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !

सूत्रधार, हे चिर उदार,
दे सबके मुख में भाषा,

तुमने कहा, कहो अब अपने
सुख, दुख, सशय, आशा,
पर अवनी से, अतरिक्ष से,
अबर, अमरपुरी से
सब लगे तुम्हारा ही करने अभिनदन ।
ओ, उज्जयिनी के वाक् जयी जगवदन ।

वहु वरदानमयी वाणी के
कृपा पात्र बहुतेरे,
देख तुम्हे ही, पर, वह बोली,
'कालिदास तुम मेरे',
दिया किसी को ध्यान, धैर्य,
करुणा, ममता, आश्वासन,
किया तुम्हीको उसने अपना
यौवन पूर्ण समपरण,
तुम कवियो की ईर्ष्या के विपय चिरतन ।
ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन ।

७

कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

देव गिरा से मैंने पूछा,
'सबसे सरस-पुनीता
सपति क्या तेरे मदिर मे ?'
बोली, 'गीत कि गीता ।'

गीत कि जिसमे तुमने राधा-
माधव-केलि बखानी,

जग की जड, मृत मर्यादा से निर्भय हो ।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

छुडा कृष्ण से भूमि-वासना—
व्रज-वधुओ की टोली,
जो लाया उस ठौर उन्हे, थी
जहाँ राधिका भोली,

मूर्ति बनी स्वर्गिक सुषमा की,
वैभव और विभा की,

युग-युग पृथ्वी पर पूजित पुण्य प्रणय हो ।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

औरो के आगे वाणी ने
बात कही या गाया,

या अपनी अद्भुत वीणा पर
कोई राग बजाया,

एक तुम्हारे ही उर-आगन
मे आकर वह नाची,

मजीर-मुखर-प्रतिध्वनित पदो मे लय हो।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो!

कोमल-कात पदावलियो की
पहुँचा दी वह सीमा
तुमने, देव, कि अब सब गाने-
वालो का स्वर धीमा,

जिस मग पर तुम चले सहज नृप
की गौरव गरिमा से,

गुणवत धरेंगे अपने चरण सभय हो।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो!

८

पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।
गति उनकी थी सहज, ज्ञान के गहरे पारावारो मे,
मान मिला था उनको राजो, शाहो के दरबारो मे,
इन बातो से बहुत प्रभावित होनेवाले दुनिया मे,
मैं सराहता क्योकि एक वे थे जग के दिलदारो मे।
भीरु, नपुसक, पाखडी के गीत नही मैं गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

दक्षिण से उत्तर तक उनकी विद्वत्ता ने नापा था,
प्रतिभा उनकी देख महाविद्वानो का दल कॉपा था,
पर जिससे दिल पुलके, पिघले, गले, ढले औ' बह जाए,
ऐसा भी तो राग उन्होने अपने कठ अलापा था।
सूखे, रूखे, रसहीनो के गीत नही मैं गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

सुना कि उनके छदो को सुन गगा भी लहराई थी,
सग प्रिया के बैठे थे वे जहाँ, वहा तक आई थी,
लहरो ने जब दिया निमत्रण तब निर्भय हो दोनो ने
मरा हुआ तट छोड अमरता की धारा अपनाई थी।
निर्जीवो के, जड-मुर्दों के गीत नही मैं गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

ठीक, उन्होंने एक सुनयनी यवनी को अपनाया था,
धर्म, समाज, प्रथा का सारा बंधन काट हटाया था,
प्यार किया करते हैं पौरुषवाले, कीमत देते हैं।
जिस कारण काशी के पंडों ने उनको ठुकराया था,
ठीक उसी कारण मैं उनको बीच सभा अपनाता हूँ।
पंडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

९

रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।
विवश जीविकोपाजन को मै
हुआ न किस-किस पथ का राही,
पर मेरा वश चलता तो मैं
होता कवि के साथ सिपाही,
इसीलिए तस्वीर तुम्हारी,
वीर, बसी मेरे अतर मे,
घर पर चलता कलम, समर मे चलती थी तलवार तुम्हारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

इस विस्तीर्ण रसा सरसा पर
भाव भेद, रस भेद अलेखे,
अपने छोटे-से जीवन मे
मैंने जितने जाने-देखे,
वीर और शृगार यही दो
जिंदा दिल वालो के पाए,
अपने शौर्य-वीय से तुम थे इन दोनो के सम अधिकारी।
रासो रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

अपभ्र श की ऊबड खाबड
जो अनगढ चट्टान खडी थी,

लौह लेखनी से तुमने ही
काट-छाट वह मूर्ति गढी थी

भाषा की, जिसपर कवि पीढी–
दर-पीढी श्रम करते आए,

हिंदी हिंद देश मे तुमने थी सबसे पहले अवतारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

भाषा मूर्ति नही पत्थर की—
मेरे कहने म कुछ गलती—
अष्टधातु की वह प्रतिमा है,
जो हर युग मे गलती ढलती,

तुमने तत्व दिए जो उसको,
और मिले हैं उनमे आकर,
एक गला सबको करना है
अतस्तल मे ज्वाल जगाकर,

हो सहाय इस महायज्ञ मे कुछ मेरे मन की चिनगारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

१०

मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।
जिन राजा-रानी को तुमने
रच-रच करके गीत सुनाए,
है उनका अस्तित्व कहाँ पर,
अब इसको इतिहास बताए,
पर उर-पुर शासक तुम तब थे,
अब हो, और रहोगे आगे,
शरण भूप शिवसिंह-लखिमा के आज तुम्हारे ही पद पावन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

थे न कबीर, न सूर, न तुलसी
और न थी जब बावरि मीरा,
तब तुमने ही मुखरित की थी
मानव के मानस की पीरा,
कौन गया था कर, कवि-शेखर,
आकुल-कातर प्राण तुम्हारा ?
कुसुम शरीर, हृदय पाहन का कौन तुम्हारा था मनभावन ?
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

कहा विरत चैतन्य महाप्रभु,
कहा मनुज ममता-रत, कामी,

पर विद्यापति के चरणो के
दोनो हैं वरवस अनुगामी,

सहस विरोधो का आलिंगन
कर चलती जीवन की धारा,

भीगेगा, वच कौन सकेगा वरसेगा जब झर-भर सावन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे,अमृतमय बोल सुहावन।

लुटा चुकी थी अपना सब धन-
वैभव जब देवो की वाणी,
देसिल वयनो की क्षमता थी
तुमने, कवि-रजन, पहचानी,

अश्रु लकीर तुम्हारे गालो
पर की अब गभीर नदी है,

वाल चद मिथिला की छत का भारत के नभ का शशि पूरन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

निर्माता, तुमने नव कविता
का तन-मन इस भाति सँवारा,
दूर-सुदूर भविष्य तुम्हारे
ही शब्दो का खोज सहारा,

'जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल' कहेगा,

लाख लाख युग हिय-हिय वसकर होगा ही वह तिल-तिल नूतन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

११

पूर्व-पश्चिम हैं गुंजाते गीत जो,

हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

कुछ बढा दाढी, रँगा कपडा महती

चाल दुनिया को दिखाना चाहते हैं,

कुछ जलाकर काम बनकर हीजडा निज

नाम सतो में लिखाना चाहते हैं,

किंतु जो पहुंचे हुए दरवेश उनको

भेस धरने की जरूरत कब हुई है,

पूर्व-पश्चिम हैं गुंजाते गीत जो,

हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

हाथ ढरकी ओर कघी से लगे थे,

आँख ताने ओर बाने से बँधी थी,

किंतु तन के काम मन के धाम को

छूते नही थे, साधना ऐसी सधी थी,

औ' वहाँ पर बज रही बाजतरी थी,

ओर अनहद नाद मे था गान होता,

प्र'ध्वनित था कठ करता शब्द केवल

जो कि ब्रह्मानद ने थे गुनगुनाए।

पूर्व पश्चिम है गुंजाते गीत जो,

हें पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

कह गए तुम बात अनहद की जहाँ तक
कौन उसके पार की कहने खड़ा है,
किंतु जीवन की हदा के बीच में भी
कम नहीं कहने-सुनाने को पड़ा है,
मानवों के दिल, दिलों की हसरतों को,
आस को औ' प्यास को औ' वासना को,
शोक, भय, शंका, महत्वाकांक्षा को
आज रक्खा जा नहीं सकता दबाए।
पूर्व-पश्चिम हैं गुँजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

जो नियता ने हृदय मुझको दिया था
अनुभवों से तूल-सा मैंने धुना है,
और उससे कातना तागे स्वरों के—
काम अपने वास्ते मैंने चुना है,
तान फैली है, नरी भी है भरी-सी,
हे जुलाहेशाह, बोलो कौन सुखमन,
कौन दुखमन तार से बीनूँ चदरिया
जो कि मेरे और जग के काम आए।
पूर्व-पश्चिम हैं गुँजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

१२

जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।

एक-दत को सुमिर लेखनी
कवियो ने ली हाथ सदा ही,
एक-नयन की दीठ बचाता
आया, हर शुभ पथ का राही,
पर मैं शायर ढीठ, लीक से
हटने मे सकोच मुझे क्या,
जायस के, हे, एक नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।

जिसका बल, जिसकी वत्सलता
जानी मैंने माँ के पय से,
जिसकी प्रेम पकी मादकता
मलिक मुहम्मद की मधु मै से,
जिसकी पावनता, तुलसी के
चरणो से निकली सुरसरि से,
उस भाषा की त्रिगुण त्रिवेणी क्यो न बहे मेरी रग-रग मे ।
जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।

किंतु हृदय की प्यास आज है
उन मधु घूटो की अभिलाषी,

जिनको पाकर छुए भावना
अतल, कल्पना हो आकाशी,
पर हो अपना नीड बनाए
अनुभव की छाती के अदर,
और व्यजना नापे शब्दो की चौमापी अवनी डग मे।
जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे।

उस मधुघट से होठ लगाने
दो मुझको भी, हे कवि दानी,
जिसमे डूब निकाली तुमने
पद्मावत की रतन-कहानी,
जिसकी प्रतिध्वनियाँ आती हैं
हर नर, नारी के चित, उर से,
जिससे उजियाला होता आया है हर प्रेमी के जग म।
जायस के, हे, एक नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे।

१३

वारवार प्रणाम तुम्हें है, राम-चरित के अमित पुजारी।

उचित यही था, प्रथम तुम्हारे
चरणों मे मैं शीश नवाता,
पर न दिया वह अवसर तुमने,
हे भारति के भाग्य-विधाता,

तुम पहले से आनेवाले
कवियों के प्रति नतमस्तक थे,

आर्य, तुम्हारे आदर का मैं बन पाऊँ कैसे अधिकारी ?
वारवार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

तुमने अपने राम-सिया मे,
रसिया, सब जग देख लिया था,
कितने नयन विशाल तुम्हारे,
कितना गहिर-गँभीर हिया था,

जीवन, काल, कर्म गति-पथ का
अंत कहाँ है ? कौन बताए ?

नही अभी तक पहुँचा कोई, जहा नही थी पहुँच तुम्हारी।
वारवार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

भला हुआ जो लगन तुम्हारी
दूर लक्ष्य की ओर लगी थी,

पाँव पडा करते थे भू पर,
आँख गगन के प्रेम पगी थी,
मग मे तुमने ठुकराकर जो
छोड दिया उसको अपनाकर,
बहुत समय पर्यंत करेगे अर्जन कीर्ति कलम कर धारी।
बारबार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

दो मुझको वरदान, तुम्हारे
काम किसी दिन मैं था आया,
राम-भगति बहुविधि वर्णनकर
जब तुमने सतोष न पाया,
तुमने मेरी ओर निहारा
और हृदय की ताली पाई,
याद तुम्हे आया, मैं ही वह कामी जिसको नारि पियारी ?
बारबार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद-लगा मैं हूँ तुम्हारा।
मैं कहाँ पहुँचा कहाँ से
अनुसरण कर ध्वनि तुम्हारी,
किंतु सहसा वह धरणि को
छोड अबर को सिधारी,
औ' प्रतिध्वनि को पकडकर
ढूढता कबसे तुम्ह मै,
सूर पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मै हूँ तुम्हारा।
मौन बैठा आज आकर
एक सागर के किनारे,
हैं मुखर जिसकी तरगें
बोल दुहराती तुम्हारे,
बूंद आसू की नयन मे
डवडवाती-डोलती है,
खो गईं नदिया जहा, तू खोजने आई सहारा।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मैं हूँ तुम्हारा।
पर नही, इन लाख लहरो
मे नही है एक ऐसी,
जीभ पर जिसके नही है
बात बिल्कुल ठीक वैसी,

तुम बता जैसी गए थे,
भावना मेरी छुम्रो तो,
नित नई स्वर-लिपि करेगी व्यक्त मेरी अश्रु-धारा।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद-लगा मैं हूँ तुम्हारा।

था सहज-विश्वास का युग
जबकि तुमने गीत गाया,
और मैं सदेह, शका,
सशयो का हूँ सताया
मैं तुम्हारे श्याम से तुमको
अधिक सच मानता हूँ,
जब मुझे भगवान कहना था, तुम्हें मैंने पुकारा।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मैं हूँ तुम्हारा।

१५

मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।

तेरे मन-मदिर के अदर
गिरिधरलाल बसा करते हैं,
और अवश्य मुझे रजकरण से
लिपटा देख हँसा करते हैं,

वे न कभी मिट्टी से खेले,
मैं उनको किस भाति बुलाऊँ,

मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।

तेरे पद-घुंघरू का रव-रस
था बचपन मे कान समाया,
औ' उसने चित्तौड किले के
भीतर मुझको ला बिठलाया

उस वेदी के आगे जिसपर
तू तन्मय नाचा करती थी,

और वही पर गाया मैने,'वह पगध्वनि मेरी पहचानी ।'
मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।

तेरे अतर का स्वर था जो
भारत के घर-घर मे गूजा,

शब्दो ने दीवाला बोला
किंतु हृदय का भाव न पूजा,
फिर भी अपने अटपट वचनो
से तू कितना कुछ कह जाती !
तू पहुँची उस ठौर जहाँ पर पहुँच नही पाती है वाणी।
मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी।

सूली ऊपर सेज सजाकर
तू अपने पी के सँग सोई,
मिलन-घडी म गाया तूने
जो फिर क्या गाएगा कोई,
गाना दूर अभी तो तुमसे
मुझे सीखना है तुतलाना,
शूल,फूल,कलि,ओस,दूब, दल तक सीमित मेरी नादानी।
मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी।

१६

कठिन काव्य के प्रेत, न डालो
मुझपर अपनी छाया,
सरल स्वभाव, सरल जीवन को
मैने मत्र बनाया ।

मेरे कुछ अगुओ को तुमने
आ अनजाने घेरा,
जिससे उनका काव्य-भवन बन
गया भूत का डेरा ।

क्लिष्ट कथन है गाठ हृदय की
शब्दो के बाने मे,
जिसने गाँठ नही पडने दी
क्यो अटके गाने मे,

क्यो भटके कोशो की गलियो
मे सूनी, अँधियारी ।
कविता, जगती के प्रागण मे
जीवन की किलकारी ।

भूत उसी घर मे बसता है
जिसके बद किवाडे,
बद खिडकिया, नही भाँकते
जिसमे रवि शशि-तारे ।

मुक्त गगन मे मुक्त पवन को
आठो पहर निमत्रण,
आओ, जाओ, अपना घर है,
बादल, विहग, प्रभजन !

भर दो मेरे अतराल को
चहक, चमक, गानो से,
इद्र धनुष के सतरगो से
बिजली के बाणो से।

कठिन काव्य के प्रेत, कभी क्या
तुमने मन-पट खोला ?
कलम तुम्हारा बहुत चला, पर
कभी हृदय भी बोला ?

एक बार, जब चद्रमुखी ने
'बाब।' तुम्हे पुकारा,
एक बार तब खुली तनिक-सी
तमक तुम्हारी कारा।

तव जीवन की हविस विवशता
में अपनी मुसकाई,
पत्थर ने जैसे छाती में
चिन्गारी दिखलाई।

एक उसी क्षण की खातिर मैं
याद तुम्हें करता हूँ,
वर्ना तुममे और तुम्हारे
भक्तो से डरता हूँ।

कठिन काव्य के प्रेत, न डालो
मुझपर अपनी छाया,
सरल स्वभाव, सरल जीवन को
मैंने मत्र बनाया।

१७

रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अंदर भी है।
सुना निजामुद्दीन जहा है
वही कही मकबरा तुम्हारा,
और गुजरता कई खँडहरो
से मै उसके पास पधारा,
उखडे गुबद, गिरती मेहराबो
के नीचे तुम सोए थे,
और कहा जाता है हिंदी भाषा जाग्रत सजग अभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी, मेरे मन के अदर भी है।

जैसे ही अपनी श्रद्धा के
मैने तुमको फूल समर्पे,
मुझको लगा कि तुम उठ बैठे,
सहसा मेरे तन मन डरपे,
दीवारो से निकल तुम्हारे
बरवै, दोहो की ध्वनि आई,
पूछूगा, क्या ऐसा अनुभव हुआ किसीको और कभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अदर भी है।

जर्जर दीवारो के मुख मे
बोल रही थी अजर जवानी,

मरी हुई मिट्टी करती थी
मुखरित अमर क्षणो की वाणी,
जिदा दिल, जिदा बोलो को
समय नही छूने पाता है,
नही, काल की छाया के ही नीचे यह ससार सभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अदर भी है।

भ्रम था, हिली न कब्र, न पत्थर-
ईंटो से प्रतिध्वनिया आई,
केवल वह बोला—की जिसने
थी मेरे उर मे पहुनाई,
जिदा वह है जो औरो के
दिल मे अपनी जगह बनाए,
रहे न अपना, कहे न अपनी, सभव यह सयोग तभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अदर भी है।

१८

नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।
उनकी आँख समझती मुझको
अपने को मुझको समझाती,
मेरी छाती की धडकन का
उत्तर देती उनकी छाती,
नाम, काम, गुण, पद, वैभव के
भेद न कोई बीच ठहरते,
माना करते थे वे सबसे बढकर स्वर-शब्दो का नाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

रग, राग, रति, रूप, गध, रस
मे वे अग-अग डूबे थे,
रुपया आना पाई चिन्तित-
चालित जगती से ऊबे थे,
रोम-रोम उनका प्यासा था
किंतु उदार-मना थे इतने,
सागर सा आदर देते थे जो उन तक था गागर लाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

तब मेरी साँसो के अदर
आँधी का पौरुष बल होता,

तब मेरे आसू की छल-छल
मे लहरों का कल-कल होता,
दुनिया लेकर सूप बनाती
बाँध रीति के, नीति-नियम के,
सिंधु-रखी सावन सरिता सा मैं अबाध बहता उफनाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

तब गीली-सीली लकड़ी-सी
जल-जल कटती उम्र न मेरी,
जीवन की सारी समिधा की
बाँकी एक लगाकर ढेरी
आग उन्हीकी भांति लगा देता,
जब तक जग देखे-देखे,
एक लपट मे भू से उठकर अंबर छूकर मैं बुझ जाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

१९

मथिलो शरण थे हिंदी के हित आए ।
पडी हुई थी एक बालिका
अनचाही, अमहायी,
अल्प वयस की, देख विवश ही
कवि-छाती भर आई,
मिथिलापति मैथिली, कण्व मुनि
शकुतला को जसे,
वैसे ही उसको गोद उठा घर लाए ।
मैथिली शरण थ हिंदी के हित आए ।

तुतलानेवाली को क्रमश
गाना गीत सिखाया,
औ' घुटनो चलनेवाली को
नतन कुशल बनाया,
आजीवन साधना उन्हीकी
आज खटी बोली जो,
युग-देश,प्रकृति,सस्कृति के साज सजाए ।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित आए ।

फिसे छोडते है जोवन मे
कठिन समय के फरे,

दुर्भापा का शाप इसे भी
वहुत दिना था घेरे,
कटा उन्ही के तप से, श्रव यह
भारत-भापाश्रो मे
पटरानी का श्रधिकार पूर्ण पद पाए।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित श्राए।

क्या न मिला उनसे, पाने की
जो रखे यह श्राशा,
जग विख्यात, नही होती है
मृपा देव-ऋपि भापा,
श्रपना ब्रह्म जगा वस कह दें,
मेरी यह मुंहवोली
मुंहवोली सव जन-भारत की वन जाए।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित श्राए।

२०

सिंहिनी शिशु को देकर जन्म
चल बसी थी जगल मे एक,
उधर से गुजरी कोई भेड,
हुआ उसमे ममता–उद्रेक।

पिलाकर अपने तन का दूध
लिया उसने वह लघु शिशु पाल,
हुआ बढकर वह भेड स्वभाव,
लगा चलने भेडो की चाल।

किसी दिन भेड-झुड के साथ
घूमता था जब सिंह-किशोर,
अचानक आकर गरजा शेर
भगी भेडे सब इस-उस ओर।

और उनके ही साथ, समान
भगा जी लेकर सिंह कुमार,
अत मे एक नदी के तीर
थमा बन खड कई कर पार।

हाफता, डरता कपित-गात
बुझाने के हित अपनी प्यास

झुकाया ज्योंही उसने शीश
हुआ उसको सहसा आभास

अरे! मैं भी तो सिंह-सपूत,
मुझे यों डरना था बेकार,
और की उसने एक दहाड़
कि जिससे कांप उठा कांतार।

हुई थी मेरे मन की ठीक
वही हालत, जिस दिन, जिस याम,
निहारा था मैंने निज रूप
तुम्हारे प्याले में, खैयाम!

तुम्हारी मदिरा से जिस रोज
हुए थे सिंचित मेरे प्राण,
उसी दिन मेरे मुख की बात
हुई थी अन्तरतम की तान!

२१

सौगध ग़ुदी की, मै ग्राहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बठ मीर के पताने ।

जिन रातो को सारा ग्रालम सोया करता,
उनमे सयमधर, शायर जागा करते है,
जिन देल को रातो मे जगती जगती है,
उनसे वे ग्राख चुराकर भागा करते हैं,
जिनम जगते दिखते थे, उनम सोते थे,
जिनमे वे रोते-सोते, उनमे जगते है,
सौगध ख़ुदी की, मै ग्राहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने।

सच पूछो तो उनके हिस्से म कोई भी
थी घडी नही ऐसी कि मीर ग्राराम करें,
शायरी चाहती थी कि शाम को सुबह करे,
जिंदगी चाहती थी कि सुबह को शाम करे,
पैरो मे चक्कर था, दिमाग म चक्कर था,
बेकस, बेबस, बेघर फिरते ही उम्र कटी,
यह एक उम्र का सफर थकाता है कितना!
जो लेटा, उठता नही कि फिर चलना जाने।

सौंगध खुदी की, मैं आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने ।

है याद सफर जो किया उन्होने दिल्ली से
लखनऊ तलक, हमराही बोला, बात करे,
लेकिन जब उसने बात शुरू की तब बोले,
'मत और बोलकर कानो को बर्बाद करे,
है दिया किराया साथ सफर कर सकते है,
लेकिन जबान मेरी क्यो आप खराब करें ।'
वे काश कब्र से डाँट पिला सकते उनको
जो शब्द उगलते बे परखे, तोले, छाने ।
सौगध खुदी की, मै आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने ।

कब मीर कब्र मे लेट नीद ले सकते है
जब शोर सुखन उनका है चारो ओर मचा,
जिसपर शायर सुख से सोए, सपना देखे,
विधना ने ऐसा बिस्तर अब तक नही रचा,
वह कभी नही मदहोशो मे, मयख्वारो मे,
वह देश-जाति-भाषा के पहरेदारो मे,
कोई न खडी बोली लिखना आरभ करे
अदाज मीर का बे जाने, बे पहचाने ।
सौगध खुदी की, मैं आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने ।

२२

गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा ग्रदाजेबया कुछ ग्रौर बन !

क्या शेर तुम्हारे मुझको ऐसे लगते हैं
जैसे घोले हो जीवन की सच्चाई मे,
जैसे बोले हो वे प्राणो की भापा म
जो नही पडा करती है हाथापाई म
सिद्धात, विचार, विवादो, वादो, नारो की,
जो पेशेवर ग्रखबारनवीस कराते हैं ?
गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन में
जिससे मेरा ग्रदाजेबया कुछ ग्रौर बने !

मै ने तुमको है पढा नही मुर्दा जिल्दो
मे वठ वल्ब के नीचे काली रातो म,
मैने तुमको है सुना जिंदगी के मुँह से
मन के सौ ग्राघातो मे, प्रत्याघातो मे,
शब्दो से मैने राज तुम्हारा कब पूछा ?
पूछा है मैने दिल्ली से, मेहरौली से,
जिसकी सडको के ऊपर तुम भटके-भूले,
जिसकी गलियो के तुमने फिर-फिर मोड गिने।

गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबयाँ कुछ और बने !

शायर के दिल मे इकलाब जब आता है,
उसकी चर्चा कब होती छापेखानो मे,
पर भावो का सैलाब उठा करता है जब
महदूद नही वह रहता है दीवानो मे,
उन सब कविताओ को मै मरी समझता हूँ
एरियल कान का जिनको नही पकडता है,
रेडियो जबा का जिन्हे नही फैलाता है,
उनका हर अक्षर कृमि-कीटो का कौर बने
गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबया कुछ और बने !

दिल्ली आया हूँ, उठता आज सवाल नही,
हम दिल्ली मे तो रहे मगर खाएँगे क्या,
नेहरू की दिल्ली का यह सबसे बडा प्रश्न,
हम दिल्ली मे तो रहे मगर गाएँगे क्या,
जो कौम नही गाती है वह मिट जाती है,
लेकिन यह कैसे सभव हो खाएँ नेहरू
की दिल्ली मे, गाएँ गालिब की दिल्ली मे,
कैसे दुनिया का यह जादुई दौर बने।
गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबयाँ कुछ और बने !

२३

मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।
जो हृदय को चीरकर आवाज उठती,
वह हृदय को चीरकर अंदर समाती,
और जो अंदर समाती, साँस बनती,
प्राण बनती, रक्त बनती, कसमसाती,
यह बदलता काल कविता का अमर स्वर
गाल मे रखकर कुचल सकता नही है।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

सरस पथ पर, शुष्क पथ पर, शून्य पथ पर
तुम चले, ऐसा सफर था जिंदगी का,
और जिस पथ पर चलें, गाते चलेंगे
सैनिकों का, शायरों का है तरीका,
शुष्क पथ के गीत गढते रूढियों को,
शून्य पथ के, गूढ, बूढों के लिए हैं,
पर सरस ध्वनियाँ तुम्हारी हैं जवानों के कलेजों में मचलती।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर फिर निकलती।

जिस समय मेरी जवानी ने दिलो की
वात सुनने की गरज से कान खोले,
प्रौढ स्वर मे उस समय टैगोर बोले
पूव से, पच्छिम तरफ इकबाल बोले
और मुझको यह लगा जैसे प्रकृति औ'
पुरुष मिलकर प्रेम-कोरस छेड बैठे,
और जो मैं गुनगुनाया, बस उन्हीकी गूँज की कुछ-कुछ नकल थी।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

हा, सुना मैंने कि वह हिंदोस्ताँ का
गान पाकिस्तान मे गाना मना है,
किंतु वह भी था तुम्हारा हिंद जो
दौरेजमा से टूट पाकिस्ताँ बना है,
जो कलामो से तुम्हारे खेल करना
चाहते है, बात इतनी सी समझ ले,—
देश की सीमा बदलती है, नही, पर, पक्ति शायर की बदलती।
मुल्क म, इकवाल,जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

२४

भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

जातियाँ जाती पतन की ओर को जब

कठ पहले वे गँवाती,

और जब उत्थान को अभियान करती

तब प्रथम आवाज़ आती,

पूव से पच्छिम तलक, गुरुदेव, गूजा

नाद जो, वह था तुम्हारा,

भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

एक आश्रम छोड, आए चीरते तुम

काल का घनतम अरण्यक,

और तुमने तोड फेंका यामिनी का

जाल जादू का यकायक,

जोड दी बीते युगो की शृखलाए

साथ, जो टूटी पडी थी,

दिव्य भारत भूमि के अमरत्व का स्वर विश्व को तुमने सुनाया।

भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

है मुझे दावा, समझता हूँ गगन की
तारिका जो बात कहती,
जो अधर में मग चहकते, और गाती
जो नदी की धार बहती,
शब्द-अर्थों की परिधि को पारकर जो
घूमती है ध्वनि तुम्हारी,
प्रध्वनित मैंने उसे कितने क्षणों में है हृदय के बीच पाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

बीज मैं उनको कहूँगा जो उगाएँ
पेड फिर से बीज वाले,
दीप मैं उनको कहूँगा जो कि अपनी
आग से फिर दीप बाले,
वह लहर है जो लहर को जन्म देती,
और आगे को बढाती,
है मुझे विश्वास, तुमने ही मुझे है आज ऊपर को उठाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

२५*

मै नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।
याद करूँगा सबसे पहले
मै तो यह वरदान तुम्हारा—
तुमने 'गीताजलि' के भावो
को अग्रेजी मे अवतारा।

चतुर कीमियागर, चादी की
प्रतिमा जो गुरुदेव-रची थी,
उसको लेकर तुमने उसपर फेर दिया सोने का पानी।
मै नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

कठ तुम्हारा फूटा था जब
गिरा हो रही थी जर्जर स्वर,
कला कला के हेतु हुई थी
जन-मन सघर्षों से बचकर,

भूषा वेश विचित्र किए कवि
अपनी छाया पिछुआते थे।

---

* इस गीत पर एक टिप्पणी पुस्तक के अंत में दी गई है।

अपने मूक देश को मुखरित करने की तुमने, पर, ठानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

आज़ादी के जद्दोजहद मे
जूझ रहे थे जब दीवाने,
लगे हुए थे तुम लिखने मे
नाटक, गल्प, निबध, तराने,

गाने जिनके शब्द-शब्द से
रूह बोलती थी आयर की,
आयर का इतिहास, पुरा विश्वास कल्पना-कर्म कहानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

स्वप्न ढकी दुनिया से लेकर
नगी दुनिया की सच्चाई
तक जो भी तुमने अपनाई
निर्भय, निर्लज्जा अपनाई,

और सुनाए मीठे-कड़ुए
अनुभव सब जीती भाषा मे
जिनको जग, जीवन, युग से डर, भरी हुई है उनकी वाणी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

वाणी मत नही अपने मे,
है यदि क्षमता, उसके द्वारा

तुमने ग्रायर के यौवन का
एक नया ही पक्ष उभारा,
जो कि सृष्टि की सुन्दरता पर
तितली सा फिर-फिर मँडलाए
किन्तु सत्य की ग्रोर बाज की भाँति बढे वे ग्रानाकानी।
मैं नतशीश तुम्हारे ग्रागे, ग्रायर के शायर अभिमानी।

कवि का पथ ग्रनत सर्प सा
जो मुख मे है पूँछ दबाए,
ग्रौर मनीषी तीर सरीखी
सीधी अपनी लीक बनाए,
उनकी दृष्टि दिशा म कितना
ग्रतर है, पर तुमने चाहा,
जो दोनो को साथ समोए, बनना सिद्ध सधा वह प्राणी।
मैं नतशीश तुम्हारे ग्रागे, ग्रायर के शायर अभिमानी।

काव्य सिन्धु म उतर तुम्हारे
मैंने तह को खूब थहाया,
मोती जो दो-चार निकाले,
यह माँझी का फर्ज बजाया,
इनको जग परखे, मेरा तो
मुग्ध सबसे बढकर था, उसकी
चिर-चचल, वर्तुल लहरो से क्रीडा की, विलसा, मनमानी।
मैं नतशीश तुम्हारे ग्रागे, ग्रायर के शायर अभिमानी।

मुझे शुरू से ही लगता था
आकर्षक व्यक्तित्व तुम्हारा,
अलग सबों से प्रकट प्रवाही
थी तुमने अपनी ध्वनि-धारा,

मै गाऊँ तो मेरा कंठ—
स्वर न दबे औरो के स्वर से

जीऊँ तो मेरे जीवन की औरो मे हो अलग रवानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आग्यर के शायर अभिमानी।

२६

ओ साची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
दो सहस्र वर्षों के पहले
महाकाव्य जो पाषाणो मे
तुमने लिखा, उसे पढ पाना
था मेरे उन अरमानो मे
जिनके पूरा हुए बिना मैं
अपना जन्म अधूरा कहता,
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

काल, प्रकृति, दानव, मानव के
दुसह कराघातो को सहते,
ऊँचा अपना भाल उठाए
अपनी पुण्य कथा तुम कहते,
अनहद नाद तुम्हारा सुनकर—
सुना, अनसुना भी बहुतो को—
कोई कह सकता है उसने बात सुनी गंभीर गगन की।
ओ साची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

कहा गए औज़ार कि जिनसे
तुमने ये रेखाएँ आकी,
कहा यत्र-क्ल रची जिन्होने
कुशल तुम्हारी छेनी-टाकी,

कहाँ गए वे साचे जिनमे
ये नैसर्गिक रूप ढले थे,

ये जिज्ञासाएँ सदियो तक वनी रहेगी विपय मनन की।
ओ साची के शिल्प साधको, वनो प्रेरणा मेरे मन की।

कला नही वसती पत्थर मे,
स्वर म, रगो की श्रेणी मे,
वाजतर म, कठ, लेखनी
मे, तूली, कीलो, छेनी मे,

कोई मदर जव जन-अतर
मथन करता, स्वप्न उघरते,
कला उभरती, कविता उठती,
कीर्ति निखरती, विभव बिखरते,

मैंने भी देखी ह ऐसी एक वडी हलचल जीवन की।
ओ साची के शिल्प सावको, बनो पेरणा मेरे मन की।

२७

ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

चार मुर्दा शब्द की माला बनाकर
मैं अमरता को पिन्हाना चाहता हूँ,
और यह हास्यास्पद खिलवाड़ करने
के लिए मैं नाम पाना चाहता हूँ,
तुम अमरता की लकीरें खींच उनके
बीच अन्तर्धान कैसे हो गए हो !
ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

मैं तुम्हारी जाति का हूँ, देश का हूँ,
पर तुम्हारे काल औ', मेरे समय में
फासला जो पड़ गया, किस भांति उसने
कर दिया है फ़र्क़ मस्तिष्को हृदय में !
क्या कला है ? क्या कलाकृति ? क्या कलाधर ?
औ' कला का किसलिए अवतार होता ?

आज इन पर वाद और विवाद बहुवा,
तुम न, मर्मी, मौन धारो।
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो !

काम जिनका बोलता है वे कभी भी,
वे किसीसे भी नही कुछ बोलते हैं,
और हम जो बोलने का काम करते
शोर करके पोल अपनी खोलते हैं,
जीभ अपनी, आख अपनी, सास अपनी
और अपना प्राण-जीवन जो तुम्हे दे—
कर गए, उनकी वताओ मान्यताएँ,
चारु चित्रो की कतारो !
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

इस जगह सिद्धाथ घर को त्याग अपने
रत्न-आभूषण वदन से दूर करते,
इस जगह पर कामिनी के कर कलामय
उँगलियो से उस कमी को पूर्ण करते,
जो प्रकृति ने छोड दी है नारि अगो
पर, प्रसाधन और शत मुक्ताभरण से,
कौन सामजस्य रखता बीच, लौकिक
और नैसर्गिक नजारो !

ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो !

इस जगह अमिताभ जग-पीडित जनो पर
शातिकर शीतल सुधा धारा बहाते,
इस जगह यौवन सुरा मे मत्त नायक
रमणिया को प्रेम की मदिरा पिलाते,
गोद मे बैठालकर, भुजपाश मे भर।
राग और विराग जैसे मिल रहे है
इस गुहा मे, उस तरह मुझमे मिलाकर
पक्तिया मेरी सँवारो।
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

स्वप्न जीवन का, कला है, जोकि जीवन
मे, निखरकर वह कला से झाकता है,
यह महज दर्पण नही है, दीप भी है
जो अमरता के शिखर को आकता है,
औ' कलाधर को सतत सकेत करता,
बधनो मे जो न बँधता वह बढाता
पाव उसकी ओर। ओ, गिरि-शृग के
आरोहियो, मुझको पुकारो।
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो !

२८

खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे गान तुम्हारा।
पर्वत पर पद रखने वाला
मैं अपने कद का अभिमानी,
मगर तुम्हारी कृति के आगे
मैं ठिगना, बौना, बे-बानी,
बुत बनकर निस्तेज खड़ा हूँ।
गुजारित हर एक दिशा से,
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला म गान तुम्हारा।

धधक रही थी कौन तुम्हारी
चौडी छाती मे वह ज्वाला,
जिससे ठोस-कडे पत्थर को
मोम गला तुमने कर डाला,
और दिए आकार, किया शृगार,
नीति जिनपर चुप साधे,
किंतु बोलता खुलकर जिनसे शक्ति-सुरुचिमय प्राण तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे गान तुम्हारा।

एक लपट उस ज्वाला की जो
मेरे अतर मे उठ पाती,
तो मेरी भी दग्ध गिरा कुछ
अगारो के गीत सुनाती,

जिनसे ठडे हो बैठे दिन
गर्माते, गलते, अपने को

कब कर पाऊँगा अधिकारी, पाने का, वरदान तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला म गान तुम्हारा।

मैं जीवित हूँ, मेरे अदर
जीवन की उद्दाम पिपासा,
जड मुर्दो के हेतु नही है
मेरे मन म मोह जरा सा,

पर उस युग म होता जिसमे
ली तुमने छेनी-टाकी तो

एक मागता वर विधि से, कर दे मुझको पाषाण तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे नाम तुम्हारा।

२६

भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !
माना मैंने पलक उठाकर
देख नही मुझको पाओगी,
किंतु न था विश्वास कि मेरी
धोती को भी बिसराओगी,
भोली, अपने निर्माता को
ऐसे भूल नही जाते हैं,
क्या कहलाओगी फिर मुझसे पूर्व जन्म की पूर्ण कहानी ?
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

जाना था तुम फिर न मिलोगी
पर आशा थी लिखकर पाती,
कभी बताओगी, पूछोगी,
क्या कहती,क्या सहती छाती,
एक तुम्हारा रूप रात-दिन
आंखोमे नाचा करता था—
वह कही तुम नीरव रेखा के अंदर भरती हो वाणी ।
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

पर न कभी जब पाती आई
तब वह कल्पित रूप तुम्हारा
मैंने मन को दृढ करने को
एक शिला को काट निखारा–

हाथ रुका है, कलम थमा है,
रमे हुए हैं दृग चिंतन मे,

कौन हृदय का भाव कि जिनके जोग शब्द की खोज, सयानी ?
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

क्या न मिलेगा, और अधूरी
पाती पूरी हो न सकेगी ?
जन्म जन्म क्या उसको पाने
को मेरी आशा तडपेगी ?

काश कलाधर तुम भी होती
और प्रतीक्षाकुलता मेरी

एक अटल पत्थर के अंदर मूर्तिमती करती, कल्याणी !
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

३०

ललित कांगडा कलम कलित के रसिक-मुजान चलाने वाली !
देख तुम्हारी रेखाओं मे
जो चिकनाहट, चटक, सफाई,
घेर, घुमाव, कमाव, ढलावट,
लोच, लटक, वल, मोड, निकाई,

सोच नही पाता हूँ कितनी
महलाई होगी जीवन की

काया तुमने, भर हाथो म प्यार, कला के नाम निहालो !
ललित कागडा कलम कलित के रसिक-सुजान चलाने वालो !

अपनी मर्मस्पर्शी तूली
से तुमने जो रूप निखारे,
वे मेरे नयनो मे झूमे,
घूमे कितने साझ सकारे,

उनकी करता खोज फिरा हूँ
कितनी रातो, कितनी राहो

पर ऊँची, नीची, पथरीली, तुम बतलाओ, पग के छालो !
ललित कांगडा कलम कलित के रसिक सुजान चलाने वालो !

फलक-रग ये पराक समात
तो भी भाव-तरग उठाते,
पर ये पहुँच निकट श्रवणों के
यौवन का आख्यान सुनाते,

मेरी पक्ति पक्ति मे गुफित
हो ऐसा ही एक फसाना,

मैं तुमसे सीखू, समझू कुछ, मुझको अपने बीच विठा लो।
ललित काँगडा कलम कलित के रसिक-सुजान चलाने वालो!

जीवन क्या है ? और कला क्या ?
क्या युग का मन मथन करता ?—
ऐसा वत कहा जो तीनो
को अपनी बाहो म भरता,

मैं इसको अकित करने म
असफल ही होता आया हूँ,

मेरा अथिर, अनिश्चित, कपित हाथ पकड कर आज सँभालो।
ललित काँगडा कलम कलित के रसिक सुजान चलाने वालो!

३१

आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती मे।
अनजानी सदियो से जिसके
जिदादिल नर नारी
ज्वाला देवी के आराधक
साधक, भक्त, पुजारी—
जो जिसके मन डोला करता
मुख से बोला करता—
आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती मे।

औ' बहता है व्यास जहा ले
शत शत निर्झर नाले,
करते बात, उसासे भरते,
गाते गीत निराले,
गर्जन करते पाषाणो पर
जो उनका पथ रोके,
लडते तट, मिलते पनघट से निज गति मदमाती मे।
आज कांगडा की घाटी का राग बसे छाती मे।

जिनकी यति मे श्राग, श्रौर है
जिनकी गति मे पानी,
वही जानते ललक जिंदगी
क्या है, वलक, जवानी।

उनके बीच बसा मैं कुछ दिन
उनकी रति मति जानी,

उनका स्नेह कही सचित है मेरी मन वातो मे।
श्राज कागडा की घाटी का राग बसे छाती म।

जो गाती हो, उनकी होगी
कैसी श्राश-निराशा,
कैसी प्यार, मरण, जीवन की
क्रान्तिकरी परिभाषा—

'चद्दर फटे ता लाई लैंणी टल्ली,
श्रवर फटे किया सीना,
खसम मरे हो जादा गुजारा,
यार मरे किया जीना!'

भाग कभी क्या होगा मेरा भी उनकी थाती मे।
श्राज कागडा की घाटी का राग वसे छाती मे।

३२

जब व्यास उसासें भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

पाषाणो की दीवार उधर,
पाषाणो की दीवार इधर,
अबर की छाजन से लटके
तारो के दीपक तितर-बितर,
पत्थर के निर्मम विस्तर पर
करवट पर करवट बदल-बदल
जब व्यास उसासें भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

कुल्लू की घाटी मे जीवन
दिन ढलते ही ढल जाता है,
इक्का-दुक्का आता-जाता
डरता है और डराता है,
पर्वत की रूह अँधेरे मे
जैसे विचरण को निकली हो,

कोई गाता तो स्वर उसका
जल के स्वर मे लय हो जाता।
जब व्याम उसासे भरता था,
मै कैसे जाकर सो जाता!

मैंने अपने को समझाया,
यह सिफ नदी का पानी है,
यह खामखयाली है इसके
पीछे कुछ प्रेम कहानी है,
ऊपर से नीचे बहता है,
क्या सहता है, क्या कहता है,
कवि देख नजारे ऐसे ही
अपने ख्वाबो मे खो जाता।
जब व्यास उसासे भरता था,
मै कैसे जाकर सो जाता!

मगल जब चोटी पर पहुँचा
तब देखा 'जीनी' आती है,
जो बात यहाँ दी जाती है,
निश्चय पूरी की जाती है,
अब मौन मुझे धारा लगती,
अब मौन किनारा लगता है,
ऊपर तारे, मेरे सिर के
नीचे 'जीनी' की छाती है,

जिसके अन्दर मुझको लगता
सौ व्यास उसासें भरते हैं,
जो व्याकुल मन थिर करते है,
मैं, काश कि, अपने गीतो मे
कुछ ऐसे अर्थ समो पाता!
जब व्यास उसासे भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

३३

मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।
सीख चुका हूँ अब मैं दोनो,
घायल करना, घायल होना,
बालपने मे चोटें खाकर
जब कि शुरू करता था रोना—
धोना, झुकी कमर के बूढे
कुछ तनकर यह बतलाते थे,
तुम हो उनके पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

सुना फिरगी फौजें आती,
लेकर तेग जगत पर बैठे,
बाधे हुए कमर मे फेटा
सिर पर पगडी, मूँछें ऐंठे,
हुक्म जनाने मे पहुँचाया—
कूद कुएँ मे जायँ धनाधम,
गोरी टुकडी ने आकर यदि इस बखरी पर हमला बोला।
मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

एक सन्न से गोला आया,
तेग कुएँ के बीच बहाई,

'छिपकर वार फिरगी करता,
कौन करे नामर्द लडाई।'

खीच डोल से पानी गोला
ठडा करके घर ले आए,

मेरे बचपन म उससे घी, शाक, दही जाता था तोला।
मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाँव गदर का गोला।

फिर न छुई तलवार कभी भी,
बने कलम के सिफ पुजारी,
पढी लडकपन मे थी मैंने
लिखी उन्हीकी खालिकवारी,

सुगखत मे लिख निग रक्खी थी
कितनी ही नायाब किताबे,

चकित देखता था मैं उनका बस्ता जब जाता था खोला।
' मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाँव गदर का गोला।

सन-से बालो, भुर्री वाले
गालो वाली बुढिये आकर,
देख मुझे छुटपन मे कहती
थी, तुम हो अपने आजा पर।

मैंने देखा नही उन्हे था,
केवल इतना सुन रक्खा था,

कडे कलेजे वाले थे वे, लोग उन्हे कहते थे भोला।
मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाय गदर का गोला।

३४

बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

था उनका अरमान काल जब
उन्हे जगत से लेने आए,
मांस धरा उनकी थाली मे,
औ' गिलास मे मदिरा पाए।

बदल गए लहजे बातो के,
मुझको पडता अर्थ बताना,
मतलब था, वे चाह रही थी,
बाबा के आगे मर जाना!

तब के जग-समाज म विधवा,
नही सुहागिन, को ये वर्जित
थे, लेकिन भगवान भाग्य म
और कर चुके थे कुछ अकित।

बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

पिता-पुत्र आ रहे कही थे,
आँधी पानी, पत्थर आया,

बेटे को छाती से ढककर
पुत्र प्रेम का मूल्य चुकाया

बाबा ने अपने प्राणों से,
घर मे पैसे की थी तगी,
घर को बेच काम कर डालो,
समझाने आए बजरगी।

दादी बोली, बेच आज घर
उनका काम करा तो दूगी,
किंतु मुझे कल रोना होगा
तब किसकी ड्योढी ढूढंगी ?

हिंदू विधवा की किस्मत पर कौन नहीं जो कपित होगा।
बाबा के संग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

नाते रिश्तेदारो ने भी
उनका बहुत विरोध किया था,
पर मेरी दादी ने जो कुछ
सोच लिया था, सोच लिया था,

बाबा लौह-पुरुष थे, भावो
मे, पर, वह जाते थे अक्सर,
दादी कोमल थी पर आखे
दृढ रखती थी वस्तुस्थिति पर।
एक दूसरे के पूरक थे
जीवन मे थे सुखी इसीसे,

सुनी प्रशसा केवल उनकी,
सुनी जहाँ, जब और जिसी से।

हृदय और मस्तिष्क उन्हीका
मुखरित हो मेरे छदो मे,
यदि मुझको जिंदा बन रहना
है हिंदी के तुकबदो मे,

मेरे रक्त नसो के अदर उनका क्या कुछ सचित होगा!
बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

३५

ललितपूर को नमस्कार है जहाँ पिता जन्मे थे मेरे।

मेरे तन मे ललितपूर का
कोई कण डोला करता है,
ग्रौर कही पर मेरे स्वर मे
उसका स्वर बोला करता है,

मिट्टी इतनी दीन नही है
जितनी कवि की ग्राह् बताती,
सात पीढियो तक यह मिट्टी
ग्रपना ग्रसर दिखाती जाती,

इसीलिए तो ग्राज कि जब मैं
ग्रपने पूरेपन को वाणी
देने का कर यत्न चला हूँ,
याद मुझे ग्राई ग्रनजानी,

ललितपूर को नमस्कार है जहा पिता जन्मे थे मेरे।

सुना, जेल के दारोगा बन
मेरे बाबा वहा गए थे,
मेल-जोल हो गया सभी से
जल्दी, गो वे नए-नए थे,

थोडे दिन के बाद नौकरी
जबकि हो गई उनकी पक्की,
दादी पहुँची बाधे बगचा,
बतन, चर्खा, चूल्हा, चक्की।

वही पिता जी हुए, वही का
अपना मधुर लडकपन जाना,
पर प्रयाग मे, ललितपूर मे
अक्सर होता जाना आना,

शिकरम के दिलचस्प सफर थे याद पिता जी को बहुतेरे।
ललितपूर को नमस्कार है जहाँ पिता जन्मे थे मेरे।

सुनी उन्हीसे थी मैंने यह
जुडी जन्म के साथ कहानी,
उसी राह म, किसी जगह पर
एक तीथ है भुइया रानी,

पूजा करते समय वही पर
वाम अग दादी का फरका,
मन्नत मानी सात चुनर की
जो घर मे खेलेगा लडका।
आते-जाते रुकर दादी
भुइया रानी को जाती थी,
औ' हर बार वहाँ देवी को
पीली चुनरी पहनाती थी।

मुइयाँ रानी! —नाम सोचकर
मैं विभोर अब हो जाता हूँ,
नामकरण करने वाले की
रुचि,रस को किस भाँति सराहूँ!
मुझे कभी जाकर करने हैं उस कवित्वमय थल के फेरे।
ललितपूर को नमस्कार है जहा पिता जन्मे थे मेरे।

३६

हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

घूम आधा विश्व, आधी ज़िंदगी को
पारकर यह सत्य जाना
श्रेष्ठ दुनिया मे नही इसके सिवा कुछ
प्यार करना, गीत गाना,
आज वाणी सग मे है, दिल भरा है
औ' तुम्हारा चित्र आगे,
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

क्योकि दोनो काम उसका है कि जिसके
पास केहरि का हिया हो,
सास ने नापा न जिसको, साथ जिसका
झड-बवडर ने किया हो,
सिंह के ही कठ से आवाज उठती
है कि जगल गूँजता है,
कोकिलाएँ कूकती, बुलबुल चहकते और भौंरे मिनमिनाते।
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

हर्फ तख्ती पर लिखे थे जबकि लाँबे,
तुम कहीं मन मे बसे थे,
मास्टर जी कुछ न समझे भेद इसका,
देखकर कितना हँसे थे !

यत्न मेरा अब कि मेरे लफ्ज मे हो
कद तुम्हारा, तुम समझते

थे फलेंगे, जो कि अपनी अक्ल अपनी नस्ल की ताकत बढाते।
हर खुशी म, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

था सबल समझा कभी तुमने मुझे या
भावनाओ मे बहे थे,
याद है वे शब्द मुझको जो कि तुमने
मृत्यु-शैया पर कहे थे—

मै बडा सौभाग्यशाली उस पिता को
और उस माँ को समझता

हूँ कि जिसके पूत के मजबूत—पाएदार काधे लाश उसकी हैं उठाते।
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

३७

हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

घटना और परिस्थितियो से
दहका करके आग-अँगारा,
इम्तहान मेरा लेने को
जब-जब दुनिया ने ललकारा,

पूज्य पिता के फौलादीपन
को तब मन को याद दिलाई–

हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

एक बार था मचा शहर मे
हिंदू–मुसल्मान का दगा,
हुआ हमारे घर के आगे
दो तुर्को का वध बेढगा,

चपत हुए मारनेवाले,
लेकिन गए पिता जी पकडे

औ' दस–पाच पडोसी–शकर,सुद्धन, मगल, भीख, भवानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होन जीवन मे थी भीति न जानी।

हाहाकार मचाया सबने
हाय राम, क्या होने वाला,

किसको किसको फाँसी होगी,
किसको किसको पानी काला,
रोना-धोना औ' चिल्लाना
काम यही था भर दिन सबका,
देख-देख कादरपन उनका हुई पिता जी को हैरानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

बोले, मेरे लाल सयाने,
बुढिया मेरी हरि–विश्वासी,
मैं कह दूँगा तुक बधे है
मैंने, मुझको दे दो फाँसी,
नही किसीका घर उजडेगा,
एक मुझे है मरना जीना,
जाकर पूछ किसीसे लेना कटघर मे मशहूर कहानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

अद्वितीय कितनी ही बातें
उनकी याद मुझे हैं आती,
कुछ मैंने खुद ही देखी थी,
कुछ अम्मा जी थी बतलाती,
सबमे हिम्मत और कडकपन
या फिर दरिया दिली गजब की,
और लगूगा कहने तो फिर होगा यह किस्सा तूलानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

३८

जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी ।

सूर्य की आँखो तले अभिमान जिसने
भी, जहा, जिस दोप-गुण का, जब किया है,
यह वही साबित हुआ, जिसको कि उसने
एक माँ के दूध से पाया, पिया है,
भाग्य मे जिसके लिखा हो कवि बने वह,
तो उसे जो माँ मिले, हो तुम सरीखी,
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी ।

याद आते हैं लडकपन के सवेरे,
मुँह-अँधेरे जबकि राधे-श्याम कहकर,
तुम उठी हो दे बुहारी, धो-नहाकर
ध्यान-पूजा से निवट गृह-काज-तत्पर
हो गई हो, हाथ धधो मे लगा है,
कठ मीरा, सूर, तुलसी के भजन मे,
और विस्तर मे रजाई से लिपटकर
आख मूदे सुन रहा हूँ मैं प्रमादी ।

जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

और सुदर काड कितने मगलो को
था सुना मुँह से तुम्हारे, याद आता—
कौन शुभ किस रास्ते से आ निकलता
है नही इसान इसको जान पाता—
उस समय चुप, मष्ट मारे बैठने का
एक ही था सामने मेरे प्रलोभन,
पाठ का जब अत होता था मगद के
लड्डुओ की थी मिला करती प्रसादी।
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

और कितनी बार घुटनो मे तुम्हारे,
जबकि घर मे गीत का त्योहार होता
था, मजीरो, ढोल, ताशो की गमक मे,
बैठकर लय, ताल, सुर था मैं सँजोता,
और मेरे झूमने पर जबकि तुमने
पीठ मेरी थपथपाई थी लगा था—
'सुरसती' ने मूक मृत पाषाण छूकर
राग भरती आग जैसे हो जगा दी।
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

३९

याद आते हो मुझे तुम, ओ, लड़कपन के सवेरों के भिखारी !
तुम भजन गाते, अँधेरे को भगाते
रास्ते से थे गुजरते,
औ' तुम्हारे एक तारे या सरंगी
के मधुर सुर थे उतरते
कान में, फिर प्राण में, फिर व्यापते थे
देह की अनगिन शिरा में,
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लड़कपन के सवेरों के भिखारी !

औ' सरंगी-साधु से मैं पूछता था,
क्या इसे तुम हो खिलाते ?
'ई हमार करेज खाथै, मोर बचवा,'
खाँसकर वे थे बताते,
और मैं मारे हँसी के लोटता था,
सोचकर उठता सिहर अब,
तब न थी संगीत कविता से, कला से, प्रीति से मेरी चिन्हारी।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लड़कपन के सवेरों के भिखारी !

बठ जाते ओ' सुनाते गीत गोपी-
चद, राजा भरथरी का,
राम का वनवास, व्रज की रास लीला,
व्याह शकर-शकरी का,

ओ' तुम्हारी धुन पकडकर कल्पना के
लोक मे मै घूमता था,

सोचता था, मैं बडा होकर बनूगा बस इसी पथ का पुजारी।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सबेरो के भिखारी !

खोल झोली एक चुटकी दाल-आटा
दान मे तुमने लिया था,
क्या तुम्हें मालूम जो वरदान तुमने
गान का मुझको दिया था,

लय तुम्हारी, स्वर तुम्हारे, शब्द मेरी
पक्ति मे गूजा किए है,

और खाली हो चुकी, सड गल चुकी वे झोलिया कब की तुम्हारी।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सबेरो के भिखारी !

४०

हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाँह मेरी।
था कहा तुमने कि, बीती को भुलाना,
आख से आसू बहाते,
वे अलग होते नही जो एक मा की
कोख से हैं जन्म पाते,
हम लडे पर वक्त पडने पर हमेशा
साथ हम थे, एक हम थे,
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाँह मेरी।

उम्र कच्ची थी, गृहस्थी और कच्ची,
था अभी तुमको न मरना,
मैं बडा था और तुमसे पूर्व मुझको
था जगत से कूच करना,
खेलता आया सदा था जिंदगी की
आग से मैं इस भरोसे—
तुम खडे पीछे, गए जब तो गए ले आखिरी तुम छाह मेरी।
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाह मेरी।

जबकि मैंने देश-दुनिया भूल कविता-
कामिनी का मर्ज़ पाला,
तब पसीने की कमाई से तुम्हीने
था समूचा घर सँभाला,
राग-रस पकते तभी है जबकि फुरसत
से उन्हे कोई पकाए,
कर मुझे बेफिक्र तुमने ही सरल औ' साफ की थी राह मेरी।
हाय, शालिगराम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाह मेरी।

चार बहनो-भाइयो के बीच केवल
एक मै बाकी बचा हूँ,
काल का उद्देश्य कोई पूर्ण करने
को गया शायद रचा हूँ,
और क्या आता मुझे है, सिर्फ इसको
छोड़—तुक से तुक मिलाना,
है अभी मुखरित कहा हर एक सुख की साँस, दुख की आह मेरी।
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाह मेरी।

४१

राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।
आठ बरस का था मैं, दिन थे
वर्षा के, थी रात अँधेरी,
काले, फूले, फैले मेघो
ने थी चार दिशाएँ घेरी,
रह-रह दामिनि दमक रही थी,
कडक रही थी, याद मुझे है,
राह कल्पना की तब तुमने सबसे पहले थी दिखलाई।

'बोलो दादी, यह गड-गड का
शोर कहाँ से नीचे आता ?'
'इन्द्र हुआ असवार-अश्व पर
बादल पर उसको दौडाता,
नालो से जो फूट कभी है
पडती चिन्गारी, वह बिजली,
गर्जन है, टापो के पडने से देते जो शब्द सुनाई।'
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

विद्युत गति से चलनेवाला
होगा कैसा अद्भुत घोडा,

उस पर वश रख सकने वाला
होगा कैसा कर्कश कोड़ा !
हृदय-सिंधु से मेरे उस दिन
उच्चैःश्रवा निकल भागा था,
तीन लोक, तीनों कालों में पैठ सहज थी उसने पाई।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

निज इच्छा वह आता, मुझको,
जहाँ चाहता, जब, ले जाता,
उसकी गति-विधि, मति-मशा का
पता नहीं मैं कुछ भी पाता,
कभी मुझे, धरती ही पर जो
चरते, उनसे ईर्ष्या होती,
और कभी वे बंदे मुझको देते हैं दयनीय दिखाई।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

स्वर्ग लोक से बोलो—कैसे
इस पर ज़ीन-लगाम चढाऊँ,
इस मुँहज़ोर तुरग को कैसे
जाघों में कस बस में लाऊँ,
कलाकार वह बड़ा, कला पर
अपनी, जो हावी होता है,
अब दुनिया कहती है अपनी चालों का मैं उत्तरदायी।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

४२

मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहाँ था, खेल की तुम थी सहेली।
कुछ सजावट, कुछ बनावट, कुछ तमाशा
दो घरो का याद मुझको,
दे गया था फिर न जाने कौन मेरे
व्याह का सवाद मुझको,
इस प्रदशन के हमी-तुम केंद्र थे, यह
तो बहुत दिन बाद सूझा,
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली।

उस लडकपन औ' जवानी के शुरू की
उलझनो को क्या बताऊँ,
भूलने का नाम वे लेती नही हैं
मैं उन्हे कितना भुलाऊँ।
एक दिन मै सत्य की ले लाश बठा,
और सपना उड गया था,
जिस दिवस आइ उसी दिन की तरह थी आज भी पीली हथेली।
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली।

प्यार किस दिन था तुम्हारा और मेरा,
तुम वही थी जो कि मैं था,
हम अलग हो जायगे इसकी कभी भी
थी न शका औ' न भय था,

किंतु उस दिन से धरातल दो तुम्हारे
और मेरे हो गए थे—

जर्जरित प्रतिपल यहाँ मैं, पर कही थी सवदा को तुम नवेली।
मैं तुम्हे पत्नी समझ पाया कहाँ था, खेल की तुम थी सहेली!

खोजता मैं उस धरातल को अँधेरे
के तलातल मे समाया,
औ' वहाँ मैंने कटारी-सा चमकता
एक नूतन चाद पाया,
कुछ नियति सकेत समझा औ' उसे ले
वस कलेजे मे धँसाया,
रक्त से मुझको नहाना था मगर मैं
एक आभा मे नहाया।

आख जो ऊपर उठाई तो सितारे
दो रहे थे कर इशारे,
और तब से आज तक चलता रहा हूँ
एक उनके ही सहारे!

उस तिमिर की श्यामता मे क्या छिपा था तेज, मुझको यह पहेली।
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली!

४३

श्यामा रानी थी पडी रोग की शैया पर,
दो सौ सोलह दिन कठिन कष्ट मे थे बीते,
सघर्ष मौत से बचने और बचाने का
था छिडा हुआ, या हम जीते या वह जीते।

सहसा मुझको यह लगा, हार उसने मानी,
तन डाल दिया ढीला आँखो से अश्रु बहे,
बोली, 'मुझ पर कोई ऐसी रचना करना,
जिससे दुनिया के अदर मेरी याद रहे।'

मै चौक पडा, ये शब्द इस तरह के थे जो
बैठते न थे उसके चरित्र के ढाचे मे,
वह बनी हुई थी और तरह की मिट्टी से,
वह ढली हुई थी और तरह के साचे मे,

जिसम दुनिया के प्रति अनत आकर्षण था,
जिसम जीवन के लिए असीम पिपासा थी,
जिसम अपनी लघुता की वह व्यापकता थी,
यश, नाम, याद की रच नही अभिलाषा थी।

क्या निकट मृत्यु के ग्रा मनुष्य बदला करता,
चट मैंने उसकी ग्राखो में ग्रांखें डाली,
वे भूठ नही पल भर पलको मे छिपा सकी,
वे बोल उठी सच, थी इतनी भोली-भाली।

जब मैं न रहूँगी तब घडियो का सूनापन,
खालीपन तुम्हे डरायेगा, खा जाएगा,
मेरा कहना करने मे तुम लग जाग्रोगे,
तो वह विधुरा घडियो का मन बहलाएगा।

मैं बहुत दिनों से ऐसा सुनता ग्राता हूँ,
जो ताज ग्रागरा मे जमुना के तट पर है,
मुमताजमहल के तन-मन की मोहकता के
प्रति शाहजहा का प्रीति-प्रतीक मनोहर है।

मुमताज ग्राखिरी सांसो से यह बोली थी,
'मेरी समाधि पर ऐसा रौज़ा बनवाना,
जैसा न कही दुनिया मे हो, जैसा न कभी
सभव हो पाए फिर दुनिया मे बन पाना।'

मुमताजमहल जब चली गई तब शाहजहाँ
की सूनी, खाली, काली, कातर घडियो को,
यह ताजमहल बहलाता था, सहलाता था,
जोडा करता था सुधि की टूटी लडियो को।

मुमताज़महल भी नही नाम की भूखी थी,
आखिरी नजर से शाहजहाँ की ओर देख,
वह समझ गई थी जो रहस्य सकेतो से
वतलाती थी उसके माथे पर पडी रेख।

वह काँप उठी, अपनी अंतिम इच्छा कहकर
वह विदा हुई औ' शाहजहा का ध्यान लगा,
उन अशुभ इरादो से हटकर उन सपनो में
जो अपने अस्फुट शब्दो से वह गई जगा।

यह ताज शाह का प्रेम प्रतीक नहीं इतना
जितना मुमताज़महल के कोमल भावो का,
जो जीकर शीतल सीकर वनता तापो पर,
जो मरकर सुखकर मरहम वनता घावो का।

गाता हूँ अपनी लय-भापा सीख इलाहाबाद नगर से।
पढता हूँ अग्रेजी जिसने
द्वार जगत-कविता के खोले,
रहती है मन की मन ही के
बीच बिना अवधी मे बोले,
लिखता हूँ हिंदी मे जिसकी
है उर्दू के साथ मिताई,
गाता हूँ अपनी लय-भापा सीख इलाहाबाद नगर से।

और यही के मिट्टी-पानी
से विरचित है मेरी काया,
अरे पूवजो, किस तप-बल से
था तुमने वह पुण्य कमाया,
ऊँचा से ऊँचा भी अतिम
वार यहा रजकण बन आता?
भारत की धरती के ऊपर चल आई यह रीति सगर से।
गाता हूँ अपनी लय भापा सीख इलाहाबाद नगर से।

भरद्वाज मुनि जहा बसे थे
उसी जगह पर आते जाते

मेरी आधी उम्र चुकी है
लिखते-पढते और पढाते

उनके यज्ञस्थल पर अब भी
सरस्वती सरिता लहराती,

अनुमानो उसकी गहराई मत मेरी इस अल्प गगर से।
गाता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

जिस बोली म गगा-जमुना
आपस मे बोला करती है,
जाडा, गर्मी, बरसातो मे
जिस गति से डोला करती है,

नकल उसीकी मैने की है
अपने शब्द, पदो, छदो म

मेरी स्वर लहरी आई है गग-जमुन की लहर अमर से।
गाता मैं अपनी लय भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

४५

तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछूँ,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबरा ?
जीवन के पथ पर है कोई चलनेवाला
बीते दिन की कुछ सुधियाँ जिसके साथ नही,
जो फिर-फिर उठकर अतर को मथती रहती,
थिर जो रहने देती क्षण भर को माथ नही ?
मिट्टी का चोला जो धरकर के आया है,
उसको मिट्टी का धर्म निभाना होगा ही,
शीतल छाया मे बैठ थके-माँदे पैरो
को सुस्ता लेने देना है अपराध नही,
जो मग तै, मजिल का कर चुकते है निश्चय,
वे भी सदाय से मुक्त कहाँ रह पाते है ?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछूँ,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

काले काले बादल उठ आठ दिशाओ से
घेरे लेते हैं नभ के चौडे आगन को,
चपला का चाबुक ऐसा तन पर पडता है
वे रोक नही पाते हैं अपने क्रदन को,
किस वन के पल्लव नीडो में जा छिपने को
यह पवन बडी तेजी से भागा जाता है,

आतक भरे ऐसे पल मे शरणस्थल की
आवश्यकता होती ही है मानव मन को,
नदियो मे उमडी बाढ, पर्वताकार लहर
विक्षुब्ध उदधि में उठ-उठ फिर-फिर गिरती है,

तुम कभी नही रुकते अवुधि के गजन से,
तुम कभी नही थमते जलधर के तजन पर,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी छाती मे ऐमी हलचल ?

तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुमी कभी नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

तुम भाग्य सराहो अपना, ऐमा कम होता,
विथकित घडियो के पास पडी अमराई है,
मृदु मजरियो के सौरभ से मदमस्त हवा
यह कहती है मधुऋतु की बेला आई है,

किस धुँधले, गहरे, बिसरे युग की हूक सजग
हो उठती है कोयल की पचम तानो से,
किन आदिम, अस्फुट भावो की सोई ध्वनियाँ,
भौंरो के गुन गुन मे लेती अँगडाई हैं,
मधुवन आया, गुज़रा, पीछे भी छूट गया,
बन-रागिनियाँ हो मद, मधुर कुछ और हुईं,
तुम कभी नही रुकते कोकिल के कूजन से,
तुम कभी नही थमते भ्रमरो के गुजन पर,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है तुम्हे सुनाई देती किसकी पग पायल ?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कभी नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

आँखो मे गडनेवाले जग से घबराकर
चितित प्राय अबर को देखा करते हैं,
नीलें नभ मे क्या स्वप्न मजीलें बसते है,
नखतो से किन गीतो के निर्झर झरते है,
जो लाख परेशानी मे भी मन बहलाते,
जो सहलाते गहरी से गहरी चोटो को,
सिर नीचा रखनेवालो की कितनी चिता,
तृण पत्तो की पलको के जलकण हरते है,

किसको फुरसत है शीश उठा देखे ऊपर,
किसको छुट्टी है शीश झुका नीचे देखे,
तुम कभी नही रुकते तारो के गायन से,
तुम कभी नही थमते शबनम के रोदन पर,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछूँ,
तुमसे मिलने को कौन कहाँ व्याकुल विह्वल?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी झोली म ऐसा सबल ?

४६

एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

रुपमती, रजित, रसवती,
गधमयी यह भूमि हमारी,
लेकिन फिर भी स्वर्ग प्रशसित,
स्वप्न-कल्पना की बलिहारी !

आज दूर का ढोल, निकट की
बीन बजे, दोनो झकृत हो,
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

इतना छोटा हृदय कि तुमने
एक जगह पर वार दिया है,
व्यर्थ गगन पर उडुगण, भू पर
फलो ने शृगार किया है,

अपने प्रिय सी छवि दिखलाई
दे मुझको हर कण, हर क्षण की,
एक प्रीति ऐसी कर पाऊँ, भूमि लगे स्वर्गो से प्यारी !
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गो से प्यारी !

सुर सतुप्ट वहुत है इससे,
मृत्यु विजय करके बैठे हैं,
पत्थर की प्रतिमा हो जाने
के ऊपर इतना ऐंठे हैं।

दृग-जल वत् अपने प्राणों को
पुन-पुन न्योछावर करके,
एक जीत ऐसी मैं लाऊ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।
एक गीत ऐसा मै गाऊ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।

चली सदा से जो आई है
मानव की गर्वीली थाती,
तरसा करती जिसको पाने
को देवो की वध्या छाती,

लेती है अवतार अमरता
जिसके अदर से धरती पर,
एक पीर ऐसी अपनाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।

४७

आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल मे राग लिए मै।

ओछे आज मुझे लगते हो
ओ, जो तुम धन-धाम सँवारे,
थोथे आज मुझे लगतें है
पोथे, नाम, खिताब तुम्हारे,

गुड्डे-गुडिया, राजा-रानी,
खेल खिलौने, दड-सिंहासन,

आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल मे राग लिए मै।

नीति बनाकर तुम लौटे हो,
देश चलेगा पीछे पीछे,
एक उठेगा यदि ऊपर को
एक चला जाएगा नीचे,

सबके हित की बात अकेली
कवि की वाणी कर सकती है,

अपने स्वर मे आने वाली मानवता का भाग लिए मै।
आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल म राग लिए मै।

बैड, बिगुल, झडे, सेना के
ऊपर तुम ऐंठे, सेनानी,
सबके अतर्पट पर लिखता
हूँ मै अपनी जीत-कहानी
गीत सुनाकर, तुमसे ऊँची
गर्दन करके क्यो न चलूँ मैं,
केवल अपने हाथो के बल मन की वीणा साथ लिए मै।
आज न मुझसे बोलो, अपने अतस्तल में राग लिए मैं।

कूद पडा मै, मुझको जीवन
की लहरो ने था ललकारा,
हुआ सदा करता है काफी
मुझे प्रकृति का एक इशारा,
आज कला, नैतिकता दोनो
अगीकार नही कर सकते,
और न तज ही सकते मुझको, ऐसा सुदर पाप किए मैं।
आज न मुझसे बोलो, अपने अतस्तल मे राग लिए मै।

४८

गीत मधुर-सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल।

घर की छत के ऊपर चढकर
जो चिल्लाते, शोर मचाते,
अपना पोलापन दिखलाते,
अपना बौनापन बतलाते,

घर के अनदेखे कोने म
तेरी वाणी की प्रतिध्वनि सुन

अनजानी आहे उठ पडती,
अनजाने आसू झर जाते।

गीत मधुर-सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल।

हल्के उठ जाते है ऊपर,
भारी भार लिए है नीचे,
जो आगे-आगे इतराते,
देख उधर से, वे है पीछे,

उनसे तेरी होड नही है,
तेरा उनका जोड नही है,

उनको दुनिया खीच रही है,
दुनिया चलती तेरे खीचे,

वहुत मिला तुझको जीवन से,
वहुत मिला साहित्य मनन से,
कर्ज़ चुका चल,
कज चुका चल।
गीत मधुर सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल।

४६

अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू ।
अबर का सगीत किसी दिन
ओस कणो ने दुहराया था,
ओस कणो का राग किसी दिन
इद्रधनुष ने अपनाया था,
दोनो म अलगाव किए अब
अधड एक अबर मे उठकर,
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लूँ ।

मद पवन को मैंने देखा
कलिका कलिका को हलराते,
अध पवन को देख रहा हूँ
गिन गिन उनको तोड गिराते,
मधुवन के जो फूल गए झड
अब तो उनकी शरण धरणि है,
मन के जो सूखे-मुर्झाए ऐसे ही कुछ फूल खिला लूँ ।
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लूँ ।

एक सास लय के अतर म
गीत सृजन का भर सकती है,
एक सास यदि उसमे दम हो
तो क्या से क्या कर सकती है।

वह सासो की सास वडे तप-
साधन से वश मे आती है,

कर लूगा सतोप अगर मै अपने सपने चार जिला लू।
अनमिल तार सभी वाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू।

सत्य मिटा जाता है, मै हूँ
सपनो का ससार बनाए,
पर इन सपनो म ही सच का
मै हूँ कुछ कुछ अश बचाए,

सत्य प्रतिष्ठित होगा जिस दिन
फिर से, इसका राज खुलेगा,

आज सशक जगत को कैसे मै इसका विश्वास दिला दू।
अनमिल तार सभी वाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू।

५०

काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।
यह कहा किसने कि जिसके शीश पर है
ताज बस राजा वही है,
और उनको क्या कहोगे राज्य जिनके
वास्ते कुछ भी नही है,
वे कुबेरी सपदा को भावना की
कौडियो पर बेच आते,
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

कटको का जो मुकुट मस्तक चढाए
हैं, उन्हीकी है वसीयत,
जो भिखारी का बनाए भेस घूमे,
राजसी, पर, थी तबीयत,
है उन्हीके दान से धनवान दुनिया
और वैभवमान दुनिया,
जो बने सतान उनकी काम उसका उस खजाने को बढाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

प्रेरणाएँ किन सुरा के निर्झरा से
जाम भर-भर ला रही हैं,
और कविता सुदरी अविराम पीती,
मस्त होती जा रही है,

कस्म ली थी, मैं न प्याले को छुऊँगा
होठ से, लेकिन, अधर को ?

मैं समझ सकता भली विधि, स्वग का सौभाग्य पर मेरे सिहाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

यामिनी है, कामिनी है और सिर म
देवताओं का नशा है,
बोलता जो प्र'ध्वनित आकाश करता
और दुहराती रसा है,

ढूढने जाता नही हूँ मैं जमाने
को कभी इस तख्त से हट,

सौ गरज उसकी पडी हो तो मुझे ही खोजने आए जमाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

५१

वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।
मुझे चाहिए वन जीवन का
जिसमे यौवन हो अमराई,
सांस नई जिसमे वासती
स्वस्थ संदेसा हो ले आई,
नई भूख से, नई हूक से,
नई कूक से जो अस्थिर हो,
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

है कोई भौगोलिक, जिसने
जीवन की सीमा बतलाई,
जो कि सका है आंक जवानी
की ऊँचाई औ' गहराई
नव पल्लव, मृदु मजरियो मे
फुदक-फुदक पिक थक जाता है,
चीर मुझे विचरण करना है चौमापी धरती-अबर को।
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

कोयल ने तो एक तान मे
सार प्रकृति का छान लिया है,
किंतु नहीं मानव दुनिया को
दान हुआ ऐसा रसिया है,
इसपर कहते ही, लिखते ही
कही लिखी हर बात पुरानी,
जितनी बार खुले मुख मेरा, भाव नए, नव पद, लय, स्वर दो।
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

हर नूतन गति ध्वनि से डरने
वाले बुज़दिल पास कही हैं,
कहते, 'ज्ञात अचल-पखो का
क्या तुमको इतिहास नही है ?'
नही गलतफहमी है मुझको
अपने बाजू के बारे म,
लक्ष्य शक्र शर का बनना भी, कुछ मानी रखता, नामर्दो!
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

५२

अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से।
पाप हो या पुण्य हो, मैने किया है
आज तक कुछ भी नही आधे हृदय से,
औ' न आधी हार से मानी पराजय
औ' न की तसकीन ही आधी विजय से,
आज मै सम्पूर्ण अपने को उठाकर
अवतरित ध्वनि-शब्द मे करने चला हूँ,
अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से।

और है क्या खास मुझमे जो कि अपने
आपको साकार करना चाहता हूँ,
खास यह है, सब तरह की खासियत से
आज मैं इन्कार करना चाहता हूँ,
हूँ न सोना, हूँ न चाँदी, हूँ न मूगा,
हूँ न माणिक, हूँ न मोती, हूँ न हीरा,
किंतु मैं आह्वान करने जा रहा हूँ देवता का एक मिट्टी के डले से।
अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से।

ग्रौर मेरे देवता भी वे नही है
जो कि ऊँचे स्वर्ग मे हैं वास करते,
ग्रौर जो ग्रपनी महत्ता छोड, सत्ता
म किसीकी भी नही विश्वास करते,
देवता मेरे वही हैं जो कि जीवन
मे पडे सघप करते, गीत गाते,
मुसकराते ग्रौर जो छाती वढाते एक होने के लिए हर दिलजले से।
ग्रग से मेरे लगा तू ग्रग ऐसे, ग्राज तू ही वोल मेरे भी गले से।

छप चुकी मेरी किताबे पूरबी ग्रौ'
पच्छिमी—दोनो तरह के ग्रक्षरो म,
ग्रौ' सुने भी जा चुके है भाव मेरे
देश ग्रौ' परदेश—दोनो के स्वरो मे,
पर ख़ुशी से नाचने को पाव मेरे,
उस समय तक हैं नही तैयार जव तक,
गीत ग्रपना मै नही सुनता किसी गगोजमुन के तीर फिरते वावले से।
ग्रग से मेरे लगा तू ग्रग ऐसे ग्राज तू ही वोल मेरे भी गले से।

५३

मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

तुम उठे ऊँचे यहाँ तक स्वर्ग को ले
गोद मे तुमने खेलाया,
किंतु क्या यह सच नही, तुमने धरणि की
भावनाओ को भुलाया ?
और वाणी को गए सौगध देकर
एक हरि का यश बखाने,
सिर धुने, पछताय, अपना भाग्य कोसे
दूसरा यदि नाम जाने,

बोलने को आज व्याकुल हो रही है
भूमि की सोई हुई तह,
यदि गिरा गिरती नही है आज नीचे
व्योम मे खो जायगी वह,

निम्न कुछ ऐसा नही जिसको छुए वह
औ' न ऊपर को उठाए,

मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

स्वर्ग सब आनन्द गुण का धाम, उसका
दुख नही है ज्ञात मुझको,
किंतु जो संघर्ष से लिपटी धरणि
उसपर बड़ा अभिमान मुझको,
धन्य तुम हो जो तुम्हे भगवान अपने
साथ मे बाँधे हुए थे,
किंतु सोते जागते पथ छोड़ता है
द्रोहमय इन्सान मुझको?
और जो उसके हृदय मे हलचलें है,
कौन उनको जानता है?
जो नही इसान को पहचानता,
भगवान को पहचानता है?

मानवों का दुख, सुख, बल, भीति जाने,
प्रीति जाने, मुँह न खोले,

मै किसी युग मे किए अपराध का अब दण्ड भरना चाहता हूँ।
मै प्रकृति प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

व्योम क्या देखा कि तुमने भूमि पर से
आख ही अपनी हटा ली,
मृत्तिका के पुत्र की, पर, चाहिए
होनी नही ऐसी प्रणाली,
एक फौआरा धरा को छोड़ नभ छू
फिर धरा को लौट आता,

वह कभी आकाश के ऊपर नही
आवास अपना है बनाता,
जो न ऊपर चढ सके जलधार ऐसी
काम की मेरे नही है,
किंतु ऊपर गो गई जो सवदा को,
वचिता उससे मही है,
ऊर्ध्व करता भूमि की आशा, अधोमुख
व्योम का आशीष करता,
मै अवनि अवर मिलाता आज चढ-चढकर उतरना चाहता हूँ।
मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

५४

गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।
सख्त पजा, नस-कसी चौडी कलाई
और बल्लेदार बाहे,
और आँखें लाल चिन्गारी सरीखी,
चुस्त औ' सीखी निगाहे,
हाथ म घन और दो लोहे निहाई
पर धरे तो, देखता क्या,
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

भीग उठता है, पसीने से नहाता
एक से जो जूझता है,
जोम मे तुझको जवानी के न जाने
खब्त क्या क्या सूझता है,
या किसी नभ देवता ने ध्येय से कुछ
फेर दी यो बुद्धि तेरी,
कुछ बडा तुझको बनाना है कि तेरा इम्तहाँ होता कडा है।
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

एक गज छाती मगर सौ गज बराबर
हौसला उसमे, सही है,
कान करनी चाहिए जो कुछ तजुर्बे-
कार लोगो ने कही है,
स्वप्न से लड स्वप्न की ही शक्ल मे है
लोह के टुकडे बदलते,
लोह-सा वह ठोस बनकर है निकलता जो कि लोहे से लडा है।
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

घन हथौडे और तौले हाथ की दे
चोट अब तलवार गढ तू,
और है किस चीज़ की तुझसे भविष्यत
माग करता, आज पढ तू,
औ' अमित सतान को अपनी थमा जा
धारवाली यह धरोहर,
वह अजित ससार मे है शब्द का खर खड्ग लेकर जो खडा है।
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

५५

रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।
काश यह होता कि तेरा साथ मिलता
और दिल को चाह मिलती,
और चलने को, नही परवाह, चाहे
जिस तरह की राह मिलती,
किंतु दुश्मन लग गया है सग, उससे
भी मुझे पडता उलझना,
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।

आज भी इतिहास हमको उस जमाने
की कथाएँ है बताते,
जबकि बीसो और अपनी शक्तियो को
लोग चलते थे लुटाते
कौन सा ऐसा किया था पाप जो इस
कापुरुष युग मे हुआ मै,
घेरता ससार को, पर आज मै ससार से घेरा हुआ हूँ।
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मैं ससार से छेडा हुआ हूँ।

चाहता था मै उन्ही नर नाहरा की
भाति जीवन को विताना,
प्रीति करना, गीत गाना, मस्त रहना,
शत्रु को नीचा दिखाना,

उस वजे की जिदगी का भेद कोई
खो चुका, वरना वही मै

विश्व को चिंतित वनाता, विश्व चिंता का कि जो डेरा हुआ हूँ।
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।

किंतु यदि ससार मुझको छेडता है,
घेरता, सिर-दर्द वनता,
तो बिना सदेह मेरा काम पहला
है, अगर मै मर्द वनता,

सामना उसका करूँ मै और घुटनो
के तले उसको दवाऊ

सब जगह असमथ हूँ मै, इस वजह से तो नही तेरा हुआ हूँ,
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।

५६

पीठ पर धर बोझ अपनी राह नापू,
या किसी कलि-कुज मे रम गीत गाऊँ?
जब मुझे इन्सान का चोला मिला है,
भार को स्वीकार करना शान मेरी,
रीढ मेरी आज भी सीधी तनी है,
सख्त पिंडली औ' कसी है रान मेरी,
किंतु दिल कोमल मिला है, क्या करूँ मै,
देख छाया कशमकश मे पड गया हूँ, सोचता हूँ,
पीठ पर धर बोझ अपनी राह नापू,
या किसी कलि कुज मे रम गीत गाऊँ?

कौन-सी ज्वाला हृदय मे जल रही है
जो हरी दूर्वा-दरी मन मोहती है,
किस उपेक्षा को भुलाने के लिए हर
फूल कलिका बाट मेरा जोहती है,
किसलयो पर सोहती हैं किसलिए बूदे
कि अपने आसुओ को देखकर मै मुसकराऊँ,
क्या लताएँ इसलिए ही झुक गई हैं,
हाथ इनका थामकर मैं बैठ जाऊँ?

५७

बहुत दिए है, किस किस पर तू वारेगा पर, हे परवाने !

नीलम-नील गगन के ऊपर
जितने झलमल करते तारे,
मरकत हरित धरणि के ऊपर
जितने जाते फल सँवारे,
उतने दीप जला करते है
मन की इस मोहक नगरी म,
बहुत दिए है किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने !

एक एक दीपक के तन मे
जाग रही है इतनी ज्वाला,
जलकर क्षार-क्षार हो जाए
लाख-लाख शलभो की माला,
और अनेक अधर बाती से
बतियाने का तू अरमानी,
कहा चला आया, दीवाने, बिन अपना कस बल पहचाने।
बहुत दिए है, किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने !

दीवो के इस जगमग मेले
के अदर यदि तू तव आता,
जव था तेरे पर-प्राणो को
नवयौवन का ज्वर वल्काता,
शर-सा तू उस लौ पर जाता
जो तुझको पहले दिख जाती,
छूट फुलझडी-सा तू जाता विस्मृति के क्षण मे अनजाने।
वहुत दिए है, किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने!

ज्योति शिखाओ पर अव सारी
साथ नज़र जाती है तेरी,
सवका अपना राग अनेरा,
सवकी अपनी आग अनेरी,
और अनेरे सवके ऊपर
पख विसर्जन करनेवाले,
सवके दाह-दहे अतस की वात कहे, गा तू वह गाने।
वहुत दिए हैं, किस किस पर तू वारेगा पर, हे परवाने!

५८

धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मे वेज़ार होता।
सब यहा कुछ बाहरी, कुछ भीतरी, कुछ
आसमानी, कुछ जमीनी,
वार कुछ जाने न जाने, जानती है
वह नही ढुलमुल यकीनी,
लाख की भी भीड मे सबसे अलग हो
जो खडी हो, चीज़ है वह,
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मे वेज़ार होता।

मैं अपरिचित हूँ नही उन कायरो से
जोकि उमसे भागते है,
वीर अपने रक्त का कर अर्घ्य अर्पित
दान अपना माँगते है,
रूप की देवी निखरती है उसीसे
स्नान करके, कापुरुप का
भीरु, दुर्बल अश्रु दुनिया मे किसीको भी नही स्वीकार होता।
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ में वेज़ार होता।

धार पर चलना कठिन है पर कठिनतर
धार को पहचानना है,
आख जो उसको न चूके, माँगती वह
एक युग की साधना है,
वह चपल गायब कभी तलवार से भी,
ओस मे भी लपलपाती,
मैं सजग रहता हमेशा तो न मेरा और ही उद्गार होता ?
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मै वेज़ार होता।

जो यहाँ आया कभी न कभी सभी को
मौत है पामाल करती,
फूल से ले वज्र तक वह हर तरह का
अस्त्र इस्तेमाल करती,
काटने तन ततु मेरा जब झपटती—
कौन है जो मन छुए वह—
चाहता मै हाथ उसके तेज कोई शब्द का हथियार होता।
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मैं वेज़ार होता।

५६

तुम भोगो, तुम जो भाव-भरा मन लाए।

घन बरसे तो मड बनाकर
खेत जगत ने सीचा,
पर बेकार खडे पानी को
दोनो हाथ उलीचा,
तुम्हे दिखे बादल की श्राखा
म विरही के श्रासू,
जिसम तुमने भी श्रपने श्रश्रु मिलाए।
तुम भोगो तुम जो भाव भरा मन लाए।

श्रामो के गुच्छे दुनिया ने
मजरिया मे देखे,
सौरभ की परियो के वे थे
नीड तुम्हारे लेखे,
चतुर भ्रमर गुन गीत सुना
पी गए श्रधर की मदिरा,
तुम रहे तृषा से श्रपना कठ जलाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव-भरा मन लाए।

फलो का उपयोग यही है
चुन चुन हार बनाओ,
लेकिन बीच पडे तो उनको
तोडो, दूर हटाओ,
हाथो की छाया भी तुमने
भूल न इनपर डाली,
पर ये डालो पर खिलते ही मुरझाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव भरा मन लाए।

प्राणो से प्रिय प्राणहीन की
सेज चिता ही होती,
नही पलक पर फिर चढ पाता
ढलक पडा जो मोती,
वहा राख को भी धारा मे
आख फेर जग लेता,
मृत सपने, पर, तुम छाती से चिपकाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव भरा मन लाए।

६०

तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्ह शिकायत करने का अधिकार नही है।

तुम्हे कल्पना मिली स्वग का सपना देखो,
अर्थ नही है इसका धरती को अपमानो,
देवो का है ज्ञात वडप्पन, इसका मतलब
कभी नही है इसानो को छोटा जानो,

प्यार पूणता मागा करता है, यह सच है,
यह भी सच है, प्यार पूर्णता दे सकता है,
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्ह शिकायत करने का अधिकार नही है।

यह किसको मालूम कि किसने किस वेला मे
इस पृथ्वी को ही कहकर वकुठ दुलारा,
किस भावाकुलता म, कैसी आतुरता से
इस मिट्टी के पुतले को भगवान पुकारा।

और प्रतिध्वनि उसकी अब तक होती आती,
याद नही क्या हो आई कुछ बीती घडिया ?

कौन अभागा है जिसकी सुधियो मे सचित
कुछ ऐसे पागलपन का उद्गार नही है।
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्हे शिकायत करने का अधिकार नही है।

जो दुनिया को नापा करते हैं रूले से,
करते रोज़ हिसाब कहाँ से, कितना लेना,
जो मन के स्वर्गों से, यह अनुभव करते हैं,
इस जगती को अभी बहुत कुछ देना देना,
वे त्रुटियो पर क्रोध करे तो कर सकते है,
तुम तो उनपर अपने अश्रु बहा सकते हो,
यह नैसर्गिक असन्तोष तप से मिलता है,
सडको पर बँटनेवाला उपहार नही है,
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्हे शिकायत करने का अधिकार नही है।

६१

बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त !
काकुले छिटकी हुई थी भाल पर औ'
गाल पर नागिन सरीखी,
किंतु शासन मे उन्हे रक्खे हुए थी
चमचमाती आख तीखी,
और जिस ससार म हर शरम अपने
पाव को आगे वढाता,
वाद को, पहले इरादे औ' निगाह
लक्ष्य के ऊपर लगाता,
वह ठहरती और फिरती थी किन्ही
अज्ञात हाथो की चलाई !
बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त !

इस गली से, उस गली से, घूर से इस
ढूह से उस, क्यो न जाने
ककडो का जा व्रजा वह चुन रही थी
हो कि जसे वे खजाने,
था जिन्हे फेंका जगत ने जानकर
वेकार कूडे की जगह पर,

किंतु जिनकी कीमतें वह जानती थी
औ' सँजोती थी परखकर,
आ गई बाज़ार में वह और चारों
ओर उसके भीड़ छाई
दर्शकों की, कम नवी के हों भले, पर अजनबीपन के बहुत-से भक्त।
बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त।

खोलकर झोली निकाला एक उसने
लाल पानी का कटोरा,
और संचित कंकड़ों में से उठाकर
एक उसके बीच बोरा,
और जब उसने निकाला तब हथेली
पर उजाला हो गया था,
उस कलुष अपरूप कंकड़ की जगह पर
एक माणिक ही नया था,
सब चकित-चुप थे कि मैंने प्रश्न पूछा,
'हो क्षमा मेरी ढिठाई,
क्या बताओगी कि माणिक में समाई
कौन से द्रव की ललाई?'

६२

याद-याद-सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।
देश-काल के अन्तराल को
काट आज सहसा तुम आईं,
खड़ी हो गईं प्रश्न चिन्ह सी
कुछ भरमाईं, कुछ शरमाईं।

'पहचाना ?' तुम पूछ रही हो,
मैं कह सकता हूँ इतना ही—

याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला भूला नाम तुम्हारा।

क्रूर समय के आघातों के
पीछे जाना चाह रहा हूँ,
दूर यहा से, अब से जाकर
पहुँच गया मै, आह, कहा हूँ!

मेरे यौवन की आखो ने
तुम्हे किसी दिन क्या बाँधा था ?

हाथों ने कुछ बात कही थी हाथ कहीं क्या थाम तुम्हारा ?
याद-याद सी शक्ल तुम्हारी, भला भूला नाम तुम्हारा।

या तुमने अपने नयनो की
मदिरा म था मुझे डुबोया,
समझा था तुम खोई खोई,
जब मै था खुद खोया-खोया !

अधकचरे जीवन मे मेरे
ऐसे धोखे बहुत हुए हैं—
पिला रहा हूँ तुमको, समझा, जब पीता था जाम तुम्हारा।
याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।

उमडी नद्दी की लहरो का
नाम कहा होता है, भोली ?
अधड के झड-झकझोरो का
धाम कहा हाता है, भोली ?

मेरी हिल्लोलें, कल्लोलें
अब दुनिया के बल बोलो मे,
मेरी सुध-बुध के अधसोए खँडहर से क्या काम तुम्हारा।
याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।

६३

सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि!

कुछ अँधियारे, कुछ उजियारे
सुनता हूँ जब तान तुम्हारी,
आ जाता है ध्यान कि मुझको
करनी है दिन की तैयारी,

औ' जग धधा मे पडना है
साथ सोचता भी जाता हूँ,

सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि!

खून-पसीने से दुनिया का
कर्ज चुकाकर जब आता हूँ,
तब रजनी के सूनेपन म
कुछ अपनेपन को पाता हूँ,

और गूजती ह कानो म
तब फिर प्रात की प्रतिध्वनिया

औ' ध्वनिया से उत्तर देकर गाता हूँ निर्द्वंद, विहगिनि!
सग तुम्हारे गाऊँगा मैं कब उठकर, आनद विहगिनि!

दिन को नौकर हूँ मैं लेकिन
राता को राजा बन जाता,
सपना, सत्य, कल्पना, अनुभव
का अद्भुत दरबार लगाता,

कहा-कहा से, किन किन शाहो
के मुझको सदेशे आते,

जाते है फरमान जगत मे बनकर मेरे छद, विहगिनि !
सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !

नीडो को नीरव नीदो मे
तुम क्या मेरी धुन पहचानो,
जिस दुग, सुख को म भजता हूँ
तुम क्या उसको जानो, मानो,

डाह बहुत है तुमसे मुझको
मुक्त परो की, मुक्त स्वरो की,

गो न गए दे मुझको कुछ कम जीवन के प्रतिबध, विहगिनि !
सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !

६४

राज उन्ह करने को दो तुम राज सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।
सिर जो भीतर से छूँछा है उसके ऊपर
चमक दमक मय हीरा, मोती, माणिक लादो,
भरा हुआ है भावा से जिसका अतस्तल
कहा उसे उद्‌गारे, उसको थल दिखलादो,
बढता है अधिकार सदा आतक जमाकर,
स्नेह प्रतीक्षा मे अपलक पथ जोहा करता।
राज उन्हे करने को दो तुम राज सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

जो औरा के ऊपर शासन करते उनको
खुद औरो के शासन मे रहना पडता है,
मेरा मन स्वच्छद सुनाता, गाता उसको,
साझ सकारे बैठा जो कुछ वह गढता है,
छाप-मुहर उनके फरमानो को बल देते,
मेरे अरमानो म बल मेरी सासा का,

जो न रुके दीवारो, गिरि-प्राचीरा, सागर
के तीरो से, आज मुझे तुम ऐसे स्वर दो।
राज उन्ह करने को दो तुम राज-सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

महल-दुमहलो के दरवाजो-मेहराबो मे
ध्वनित विकारो का भी कोई लेखा-जोखा,
जब-जब उनके नीचे से गुज़रा हूँ, मेरा
हृदय पुकार उठा, सब जड, सब मुर्दा, धोखा!
उन्हे मुबारक ठस-मज़बूत किला हो, मैने
नीड बनाया कोमल द्रुम की धुर फुनगी पर,
खर, पर, पत्ता हर तूफान उडा ले जाए,
किंतु धडकता उर मे तुम अनुराग अमर दो।
राज उन्हे करने को दो तुम राज-सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

६५

कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।
देख तुम्हे कितने भावों की
बाढ हृदय मे आती,
औ' कितनी साधा की भंवरे
नयनों म अकुलाती,
मैं वाचाल, तुम्हारे सम्मुख
मूक, मगर, हो जाता,
रसना हो जाती है जैसे पाहन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।

कभी नहीं, मन कहता, तुमने
की होगी प्रत्याशा,
सुनने की मुझसे जो तुमसे
बोलूगा मैं भाषा,
फिर न रहेगा चित्र बनाया
जैसा तुमने मेरा,
कपित करती कल्पना मुझे उस क्षण की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।

नेत्रो मे विवित न हुआ क्या
होगा अतर मेरा ?
देखा होगा तुमने उसमे
किन चाहो का डेरा ?
भेद ढका जो समझ रहा हूँ
खुल न चुका क्या होगा ?
कवि कहते, आँख नही मोहताज वचन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।

मानव चाहे सब दुनिया से
अपना रूप छिपाए,
कही चाहता नग्नतना औ'
नग्नमना रह पाए,
मै जैसा हूँ, और न मुझको
देखे, तुम तो देखो,
वर्ना, कोई कुछ भी समझ,
एक बडी अपने को
मानूगा मै धोखेबाज़ी जीवन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मै मन की।

६६

बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मैं जीवन की परिधि बनाऊँ।

किसके चारा ओर न खीचे
मैने अपने मन के घेरे,
मेरे उर की दुबलता के
जग मे आकर्षण बहुतेरे,
इतना थिर न रहा कोई भी
परिक्रमा पूरी हो जाती,
बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मैं जीवन की परिधि बनाऊँ।

खूब मुझे मालूम कि जग म
सीधी राहे भी बहुतेरी,
चलनेवालो को मजिल—
मकसूद पहुँचने मे क्या देरी,
लक्ष्य उन्होने देख लिया क्या,
पथ के फूल हुए अनदेखे,
और यहा पर टेक रही है
काटो से भी नेह लगाऊँ।

बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

मधुवन की डाली पर कितनी
फूल और काटो की दूरी,
पर मै इनसे समझ रहा जो
उनके अदर दुनिया पूरी,
छोटे घेरो के अदर मन
मेरा घबराता, घुटता है,
सुदर है हर चीज यहाँ पर
किसको छोडू, क्या अपनाऊँ।
बनकर केद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

तुम स्वीकार हुई क्या, मुझको
सब जीवन स्वीकार हुआ है,
इस पथ पर जो कुछ भी मिलता
सबसे मुझको प्यार हुआ है,
स्वर्ग नरक, साधना वासना,
सुख दुख, आशा और निराशा
आलिगन मे बद्ध खडे है,
पाप करूँगा जो अलगाऊँ।
बनकर केद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

६७

मेरे मन-प्राणो को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।
युगल तुम्हारी सघन भँवो मे
मेरा दिल पथ भूल गया है,
उदित हुआ आयत नयनो म
जैसे कोई क्षितिज नया है,
जन्म अवधि वढता जाऊँगा
तो भी छू न इसे पाऊँगा,
रुक न सकूगा, लौट न पाऊँगा, फिर भी, यह और मजा है।
मेरे मन प्राणो को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

मेरी मृदुता इस दुनिया मे
वहुत गई रगडी-मसली है,
किंतु कठोर नही हो पाई
है, तो लगता है, असली है,
नही मुझे मालूम वना था
मै कसे इसका अधिकारी,
या मैने कुछ पाप किया था जिसकी, कवि को आज, सजा है।
मेरे मन प्राणो को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

ओढ़ गया हो जो परत की
कल्पिन उसकी मूर्ति करेगी,
काया जिसकी पास न आई
उसकी छाया को पकड़ेगी।
भावों के सौ डगर नगर-
खँडहर से होगी भाग दौड़ी,
और नतीजा इसका जो कुछ होना है वह राम-रचा है।
मेरे मन-प्राणों को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

ओ, सुखमा की आकृतियो, जो
आकुल प्राण किया करती हो,
वह अपराध किया करती हो,
या एहसान किया करती हो,
तुम क्या जानो, कितना भारी !
कितने मन का, कितनी सुधि से,
कितनी बार, करेगा मथन, मैंने जो यह गीत रचा है।
मेरे मन प्राणों को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

६८

इस रुपहरी चादनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।
पूर्णिमा का चाद अबर पर चढा है,
तारकावलि खो गई है,
चादनी म वह सफेदी है कि जैसे
धूप ठडी हो गई है,

नेत्र निद्रा के मिलन की वीथिया म
चाहिए कुछ कुछ अँधेरा,

इस रुपहरी चादनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।

नीड अपने छोड बैठे डाल पर कुछ
और मँडलाते हुए कुछ,
पख फडकाते हुए कुछ, चहचहाते,
बोल दुहराते हुए कुछ,

'चादनी फैली गगन म, चाह मन म',
गीत किसका है? सुनाओ!

मौन इस मधुयामिनी म हा नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चाँदनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।

इस तरह की रात अवर के अजिर मे
रोज तो आती नहीं है,
चाँद के ऊपर जवानी इस तरह की
रोज तो छाती नही है,
हम कभी होगे अलग, औ' साथ होकर
भी कभी, होगी तबीयत,
यह विरल अवसर विसुधि म खो नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चादनी मे सो नही सकते पखेरू और हम भी।

ये विचारे तो समझते हैं कि जैसे
यह सवेरा हो गया है,
प्रकृति की नियमावली मे क्या अचानक
हेर-फेरा हो गया है,
और जो हम सब समझते हैं कहाँ इस
ज्योति का जादू समझते,
मुक्त जिसके बधनो से हो नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चादनी मे सो नही सकते पखेरू और हम भी।

६६

न तुम सो रही हो, न मैं सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।
दिखाई पडे पूव मे जो सितार,
वही आ गए ठीक ऊपर हमारे,
क्षितिज पच्छिमी है बुलाता उन्ह अब,
न रोके रुकेंगे हमारे-तुम्हारे।
न तुम सो रही हो, न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

उधर तुम, इधर मैं, खडी बीच दुनिया,
हरे राम ! कितनी कडी बीच दुनिया,
किए पार मैंने सहज ही मरुस्थल,
सहज ही दिए चीर मैदान-जगल,
मगर माप म चार बीते बमुश्किल,
यही एक मजिल मुझे खल रही है।
न तुम सो रही हो, न मैं सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच म ढल रही है।

नही आख की राह रोकी किसीने,
तुम्हे देखते रात आधी गई है,
ध्वनित कठ मे रागिनी अब नई है,
नही प्यार की आह रोकी किसीने
वढे दीप कबके, बुझे चाद तारे,
मगर आग मेरी अभी जल रही है।
न तुम सो रही हो, न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

मनाकर बहुत एक लट मै तुम्हारी
लपेटे हुए पोर पर तर्जनी के
पडा हूँ, वहुत खुश, कि इन भावरो म
मिले फारमूले मुझे ज़िदगी के,
भँवर मे पडा सा हृदय घूमता है,
बदन पर लहर पर लहर चल रही है।
न तुम सो रही हो न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

७०

आज चचला की वाहो म उलझा दी है वाह मैने।

डाल प्रलोभन मे अपना मन
सहल फिसल नीचे को जाना,
कुछ हिम्मत का काम समझते
पाव पतन की ओर वढाना,
भुके वही जिस थल भुकने म
ऊपर को उठना पडता है,
आज चचला की वाहो मे उलझा दी है वाहे मैन।

काँटो से जो डरनेवाले
मत कलियो से नेह लगाएँ,
घाव नही है जिन हाथो मे,
उनम किस दिन फूल सुहाए,
नगी तलवारो की छाया
मे सुदरता विहरण करती,
और किसीने पाई हो पर कभी नही पाई है भय ने।
आज चचला की वाहा म उलझा दी है वाह मैने।

विजली से अनुराग जिसे हो
उठकर आसमान को नापे,
आग चले आलिगन करने,
तब क्या भाप-धुएँ से कापे,

साफ, उजाले वाले, रक्षित
पथ मरो के कदर के हैं,

जिनपर खतरे-जान नही था, छोड कभी दी राह मैने।
आज चचला की वाहो मे उलभा दी है वाह मैने।

वूद पडी वर्षा की चूहे
और छछूदर बिल मे भागे,
देख नही पाते वे कुछ भी
जड-पामर प्राणो के आगे,

घन से होड लगाने को तन-
मोह छोड निमम अवर मे

वज्र-प्रहार सहन करते हैं वैनतेय के पैने डैने।
आज चचला की वाहो मे उलभा दी है वाह मैने।

७१

सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

भौह की तलवार से रक्षित तुम्हारे
युग दृगो को यदि चुराता,
और ले जाकर उन्हे मै उस नदी के
बीच नहलाता धुलाता,
जो खुशी के और गम के आसुओ को
साथ लेकर बह रही है,
और जिसकी हर लहर इसान की सुख-
दुख कहानी कह रही है,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

सीख मा की, बाप की, अध्यापको की
बात पुस्तक से उठाई,
चुटकुले हमजोलियो ने जो सुनाए—
बस यही जिनकी कमाई,
कान को ऐसे चुराता यदि तुम्हारे
और ले जाता वहा पर,
स्वर्ग का उल्लास, नरकोच्छ्वास दोनो

साथ सुन पड़ते जहाँ पर,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

चरफरापन चटपटे का औ' मलाई
के बरफ की ठड जानी
जिस अधर ने, जीभ ने, गन्ने गँडेरी
मे रसो की सब कहानी,
मैं उन्हे ले जा अगर ससार, जीवन,
प्यार की तह को छुलाता,
और हालाहल, सुरा के औ' सुधा के
स्वाद से परिचित कराता,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

सास आती और जाती है इसीसे
जो हृदय दबता-उभरता,
और अपनी धौकनी सी हरकतो से
रक्त को जो शुद्ध करता,
उस हृदय के साथ लग जब ज्वार-भाटा
भावनाओ का बताता,
और अपनी धडकनो से उन कपाटो
की सिकडिया खटखटाता,
बद जिनम भेद है जिनको अकेला
कवि जमाने को सुनाता,
सुमुखि, तब मैं प्यार कर सकता तुम्हे था।

७२

जिन कपाटो को तरफ मैं पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

कल तलक मै इस प्रतीक्षा म खडा था
तुम हृदय का द्वार खोलो,
ओर जिह्वा, कठ, तालू के नही, तुम
प्राण के दो बोल बोलो,
आज देरी हो चुकी है और मेरे
पाव धीरज खो चुके है,
जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

क्या तुम्हारा ख्याल था मैं पाव अपने
तोडकर बैठा हुआ हूँ,
औ' तुम्हारी इस उपेक्षा के लिए भी
मै तुम्ह देता दुआ हूँ,
ज़िदगी के रास्ते मे ठहरने का
आज कल मौका किसे है,
खोलती भी तुम अगर पट दो दफा बस
मुसकराता, दो दफा बस आह भरता।

जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

और इतने के लिए भी लोग ऐसे
हैं कि जो तरसा किए है,
क्योकि ऐसे ही मिले हैं जो कि दिल पर
लाख की मुहरे दिए है,
और उनका हास, उनकी आह, उनकी
वात कुठा मात्र होती।
मै मुखर होता अगर तो कौन मेरा
स्वर दवाता, कौन मेरी जीभ धरता।
जिन कपाटो की तरफ मैं पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

और ऐसा है, कि मेरा भ्रम, कि पीछे
से भरी आवाज आती?
और उसको सुन प्रतिध्वनि रूप मेरी
धकधकाती छिन्न छाती,
और कुछ विच्छिन्न कडियाँ जोड लेने
के वहाने थम गया हूँ,
वोल, कवि के मन, तुझे क्या आज अपनी
जिद नही रह-रह खटकती,
प्रण नही रह-रह अखरता।
जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

७३

सुर सरोवर नीर नहलाए परा को
किस तरफ फैला रहा है ?
सूर्य-शशि के वश म पैदा हुग्रा तू,
कीर्ति जिनकी जग उजागर,
वास तेरा तीर्थ, जिसको ग्रनगिनत जन
है गए माथा झुकाकर,
हिम शिखर की स्वच्छ ग्रौ' पावन हवा ने
है जिन्ह उडना सिखाया,
सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

देख ग्रपने साथियो को जो धरा से
वद्ध होकर हाथ ग्रपने
ह गगन की ग्रोर फैलाए, वसाए
ग्राख म सतरग सपने ।
एक वे है, जो कि ग्रपनी साधना से
पक से ऊपर उठे ह,
एक तू है, पख ग्रपना नीच कीचड
म फँसाने जा रहा है ।

सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

और यह मत भूल तूने इस जगत मे
क्या बडा सम्मान पाया !
कुद इदु-तुषार हार-धवल गिरा ने
है तुझे वाहन बनाया।
मोतियो का जो करे आहार, खाने
के लिए कतवार, टूटे !
सोच, तेरे साथ तेरे देवता पर
दाग लगने जा रहा है।
सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

वह मिली सत्ता तुझे, तू याद आए
जब सजाए प्रात प्राची,
वह महत्ता, न्याय और विवेक का तू
बन गया पर्यायवाची,
वह मिला व्यक्तित्व तुझको जो कि सागर
बीच उतराए समुज्ज्वल,
चेत हस कुमार, डाबर है कि जिसमे
डूबने तू जा रहा है।
सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

७३

सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

सूय-शशि के वश म पैदा हुआ तू,
कीर्ति जिनकी जग उजागर,
वाम तेरा तीर्थ, जिसको अनगिनत जन
हैं गए माथा झुकाकर,

हिम शिखर की स्वच्छ औ' पावन हवा ने
है जिन्ह उडना सिखाया,

सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

देख अपने साथियो को जो धरा से
बद्ध होकर हाथ अपने
ह गगन की ओर फैलाए, बसाए
आख मे सतरग सपने ।

एक वे है, जो कि अपनी साधना से
पक से ऊपर उठे है,
एक तू है, पख अपना नीच कीचड
मे फँसाने जा रहा है ।

सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

और यह मत भूल तूने इस जगत मे
क्या बडा सम्मान पाया !
कुद इदु-तुषार हार-धवल गिरा ने
है तुझे वाहन बनाया।
मोतियो का जो करे आहार, खाने
के लिए कतवार, टूटे !
सोच, तेरे साथ तेरे देवता पर
दाग लगने जा रहा है।
सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

वह मिली सत्ता तुझे, तू याद आए
जब सजाए प्रात प्राची,
वह महत्ता, न्याय और विवेक का तू
बन गया पर्यायवाची,
वह मिला व्यक्तित्व तुझको जो कि सागर
बीच उतराए समुज्ज्वल,
चेत हस कुमार, डाबर है कि जिसमे
डूबने तू जा रहा है।
सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

७४

आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।
आज पथ मे साथ जो होगा
सगा भाई बनेगा,
हाल भर जो पूछ लेगा
स्वग-सुखदायी बनेगा,
जो चुभा, उसको कहूँगा
पद पकडकर है बिठाता,
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

हा, कभी ससार, जीवन,
काल से आशा बडी थी,
एक गज को नापने को
एक योजन की छडी थी,
तब निराशा आँख फाडे
हर दिशा से देखती थी,
और था अभिशाप ही अभिशाप हर वरदान मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

स्वप्नमाती पुतलियो ने
सत्य को कूडा समझकर

है हजारो वार फेंका
घूर पर, गदी जगह पर,
फाड कितने गीत डाले
रद्दिया की टोकरी मे,
ओ' बना रुदन पुराना, सृष्टि का नव गान मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

पर न जाने कब लगा, यह
स्वप्न है अभिमान मेरा,
मैं स्वय कितने अभावा
ओ' कुभावो का बसेरा,
यह मनुजता, यह प्रकृति
मुझको लगी वहने सहोदर,
फल-सा लगने लगा जो था कभी पाषाण मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

अब नही सँग मे प्रणय के
चाहिए बलिदान मुझको,
आज तो अभिभूत करने
को बहुत मुसकान मुझको,
आज करुणा के दृगो से
देखता कोई मुझे तो,
मैं समझता हूँ कि नजरें डालता भगवान मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

७५

आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
म न खोलू द्वार कसे !
एक दिन घायल हरिण-सा मै तुम्हारे
द्वार पर आया हुआ था,
श्वेत सरसिज-पखुरी सी उँगलियो से,
पर, नही तुमने छुआ था,
घाव तो भरता समय, सवदनाएँ
भाव पर मरहम लगाती,
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मै न खोलू द्वार कसे !

मै अचानक ही भयानक जग-अरण्यक
म विचरता आ गया था,
किंतु उसकी नीति-रीति न जानता था
एकदम भोला, नया था,
एक अनजानी दिशा से तीर आया,
बिध गया, मै छटपटाया,
क्रूरता इतनी जहा पर है, न होगा
उस जगह पर प्यार कसे !

आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
मै न खोलू द्वार कसे !

और जब तुमने न पूछी बात, समझा
मैं कि धोखा खा रहा हूँ,
जिन कपाटो पर कडे जदरे जडे हैं
मैं उन्हें खडका रहा हूँ,
और अब मैं जानता हूँ वे किसीकी
चोट से ही टूटते हैं,
जिस किसीने चोट पर चोटें सही हो,
वह बनेगा मर्द परदेदार कैसे !
आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
मैं न खोलू द्वार कैसे !

स्वागतम् सबको सुनाकर कह रहा हूँ,
स्नेह लो, सवेदना लो,
हाथ मेरा दाग से डरता नही है,
रक्त की धारा धुला लो,
यह समय का तीर लगता है सभी को,
शुक्रिया इसके लिए है,
कर गया मानव मुझे जो, मैं न उसका
मानता आभार कैसे !
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मै न खोलूँ द्वार कैसे !

औ' न अपना दोष देखो, औ' न मेरा
गुण सराहो, आर्द्रनयने,
तीर तुमको ही प्रथम लगता अगर तो
मैं न करता, आन वयने,
ठीक वैसा ही कि तुमने जो किया था ?
जानता कोई नहीं है—
कब, कहा पर, कौन पोछेगा, किसीके
आंसुओं की धार, कैसे !
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मैं न खोलूं द्वार कैसे !

७६

साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता।

जब कहा मैंने कि है यह शुरू जो
वेला विदा की पास आई,
कुछ तअज्जुब, कुछ उदासी, कुछ शरारत
से भरी तुम मुसकराई,
वक्त के डैन चले, तुम हो वहा, मै
हूँ यहा, पर देखता हूँ,
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता।

स्वप्न का वातावरण हर चीज के
चारो तरफ मानव बनाता,
लाख कविता से, कला से पुष्ट करता,
अत मे वह टूट जाता,
सत्य की हर शक्ल खुलकर आख के
अदर निराशा झोकती है,
और यह धुलती नही है ज्ञान जल से,
दर्शनो से, मरमिटे इमान धोता।

साथ भी रखता तुम्हें तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

शीर्ष आसन से रुधिर की चाल रोको,
पर समय की गति न थमती।
औ' खिज़ाबोरंग-रोगन पर जवानी
है न ज्यादा दिन बिलमती,
सिद्ध यह करते हुए जाते अगिनती,
द्वार खोलो और देखो,
और इस दयनीय सुख के काफ़ले में
जो न होता सुबह को, वह शाम होता।
साथ भी रखता तुम्हें तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

एक दिन है, जब तुम्हारे कुंतलों से
नागिन लहरा रही हैं,
और मेरी तनतनाई बीन से ध्वनि-
राग की धारा बही है,
और तुम जो बोलती हो, बोलता मैं,
गीत उसपर शीश धुनता,
और इस संगीत-प्रीति समुद्र जल में
काल जैसे छिप गया है मार गोता।
साथ भी रखता तुम्हें तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

और यह तस्वीर कैसी, नागिनें सब
केचुलो का रूप धरती,
औ' हमे जब घेरता है मौन उसको
सिर्फ खांसी भग करती,
औ' घरेलू कण कटु झगडे-बखेडो
को पडोसी सुन रहे हैं,
और बेटो ने नही है खर्च भेजा,
और हमको मुंह चिढाता ढीठ पोता।
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता !

७७

धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलापाएँ।

कुहरे को फाड प्रकाश निकल आया वाहर,
वादल को फाड समीर सहज गतिवान हुआ,
डालो की छाले फाड निकल आए पल्लव,
जल का तल फाड सरोरुह रवि-छविमान हुआ,
जो मिट्टी कल काली, गीली, तृणक्षीण थी,
रगीनी उसके ऊपर आज निसार हुई,
धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलापाएँ।

जो धूल-धुआरा नभ था, नीलाकाश हुआ,
जो हवा काटती थी, सहलाती गालो को,
जो शाख डराती थी, आखो को भाती हैं,
पकज आमत्रण देता राज-मरालो को
मैंने तो अपने वचपन से यह देखा था
पहले पौधा वढता, फिर फूल निकलता है,
जय फोड धरा को फल निकल आएँ पहले,
क्यो कोई आँखें फाड न मुह को फैलाए।

धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

हर पेड़ हरा, हरियाली की सौ किस्म है,
हर फूल रँगीला है अपनी ही रगत म,
हल्का गहरा होकर सौ है हर एक रग,
होता हज़ार दूसरे रग की सगत मे,
आँख रगो के मेले से परितृप्त हुई,
मेरी पूरब की नाक खोजती खुश्बू भी,
वह यहा नही, इस वक्त रात की रानी,
चपा, मेहदी की क्यो याद न मुझको तडपाए।
धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

हो गध न इनमे, लेकिन रस तो होता है
वरना भौरा कैसे लिपटा-चिपटा रहता,
हो खडे किसी भी तरवर के नीचे जाकर
ऊपर से चिडिया के स्वर का झरना वहता,
हल्के-झीने परिधान पहन गौरागिनियाँ
वैठी लेटी प्रियतम को लेकर लानो मे,
हम परदेसी कमरे म वैठ न गीत लिखे,
तो किस गोशे मे जा अपने को वहलाएँ।
धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

७८

बौरे आमो पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
माना अब आकाश खुला सा और धुला सा,
फैला-फैला, नीला नीला,
बर्फ-जली-सी, पीली-पीली दूब हरी फिर,
जिसपर खिलता फूल फबीला,

तरु की निरावरण डालो पर मूगा, पन्ना
औ' दखिनहटे का झकझोरा,

बौरे आमो पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।

माना, गाना गानेवाली चिडिया आई,
सुन पडती कोकिल की बोली,
चली गई थी गर्म प्रदेशो मे कुछ दिन को
जो, लौटी हँसा की टोली,

सजी-बजी बारात खडी है रग बिरगी,
किंतु न दूल्हे के सिर जब तक

मजरियो का मौर मुकुट कोई पहनाए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
बौरे आमो पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।

डार-पात सब पीत पुष्पमय जो कर लेता
अमलतास को कौन छिपाए,
सेमल और पलाशों ने सिंदूर-पताके
नहीं गगन में क्या फहराए ?

छोड नगर की सँकरी गलिया, घर-दर, बाहर
आया, पर फली सरसों से

मीलों लंबे खेत नहीं दिखते पियराए, कैसे समझूँ मधुऋतु आई।
बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूँ मधुऋतु आई।

प्रात से संध्या तक पशुवत मेहनत करके
चूर-चूर हो जाने पर भी,
एक बार भी तीन सैकडे पैंसठ दिन में
पूरा पेट न खाने पर भी,

मौसम की मदमस्त हवा पी जो हो उठते
है मतवाले, पागल, उनके

फाग-राग ने रातों रक्खा नहीं जगाए, कैसे समझूँ मधुऋतु आई।
बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूँ मधुऋतु आई।

७६

धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

नील गगन से मग्न उतरती
नग्न किरण की माला,
अब उतार कर फेंको तुम भी
तन से हिम का गाला,

शीत चुका है बीत, वसती
निकला पुन सबेरा,
धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

आखो ने देखी फिर तरुवर
की शाखे अरुणाई,
हवा दखिनही घूम रही है
भरमाई, भरमाई,

उसके चुबन से झडती हैं
मणि मरकत की लडियाँ,
तुम भी अपना वरदान उठो अब मागो।
धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

भ्रमरो के होठो मे जागी
फिर से प्यास पुरानी,
पर कच्ची कलि के अधरो से
क्या पाते वे ? पानी ।

समय विकसने, मधु, पराग से
भरने मे लगता है,
सयम से लो कुछ काम, अधीर, अभागो !
धरती मे सोए फूल, कली फिर जागो !

मैंने अपनी बीन सँभाली,
तार कसे सब ढीले,
सुरा सुरो की खीची, जिसको
पीनी हो वह पी ले,

हाथ नशीले और उँगलिया—
रस म भीगी-भीगी,
प्राणो मे गूजो फिर, प्रणयी के रागो !
धरती मे सोए फूल, कली फिर जागो !

८०

अब दिन बदले, घडिया बदली,
साजन आए, सावन आया।

धरती की जलती सासो ने
मेरी सासो मे ताप भरा,
सरसी की छाती दरकी तो
कर घाव गई मुझपर गहरा,
है नियति प्रकृति की ऋतुओ मे
सबध कही कुछ अनजाना,
अब दिन बदले, घडिया बदली,
साजन आए, सावन आया।

तूफान उठा जब अबर मे
अतर किसने झकझोर दिया,
मन के सौ बद कपाटो को
क्षण भर के अदर खोल दिया,
झोका जब आया मधुवन मे
प्रिय का सदेश लिए आया—
ऐसी निकली ही धूप नही
जो साथ नही लाई छाया।

अब दिन बदले, घडियाँ बदलीं,
साजन आए, सावन आया।

न के आगन से बिजली ने
व नयनो से सकेत किया,
मेरी वे होश हवास पडी
आशा ने फिर से चेत किया,
मुरझाती लतिका पर कोई
जैसे पानी के छीटे दे,
औ' फिर जीवन की सासे ले
उसकी मृयमाण जली काया।
अब दिन बदले, घडिया बदली।
साजन आए, सावन आया।

रोमाच हुआ जब अवनी का
रोमाचित मेरे अग हुए,
जैसे जादू की लकडी से
कोई दोनो को सग छुए,
सिंचित सा कठ पपीहे का,
कोयल की बोली भीगी सी,
रस-डूबा, स्वर म उतराया
यह गीत नया मैंने गाया।
अब दिन बदले, घडिया बदली,
साजन आए, सावन आया।

८१

मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।
जिसने कलियो के अधरो मे
रस रक्खा पहले शरमाए,
जिसने अलियो के पखो मे
प्यास भरी वह सिर लटकाए,
आख करे वह नीची जिसने
यौवन का उन्माद उभारा,
मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

मन मे सावन-भादो बरसे,
जीभ करे, पर, पानी-पानी!
चलती-फलती है दुनिया म
बहुधा ऐसी बेईमानी,
पूवज मेरे, किंतु, हृदय की
सच्चाई पर मिटत आए,
मधुवन भोगे, मरु उपदेशे मेरे वश रिवाज नही है।
मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

चला सफर पर जब तब मैने
पथ पूछा अपने अनुभव से,
अपनी एक भूल से सीखा
ज्यादा, औरो के सच सौ से,

मैं बोला जो मेरी नाडी
म डोला, जो रग म घूमा,

मेरी वाणी आज किताबी नक्शो की मोहताज नही है।
मैं सुख पर, सुखमा पर रीभा, इसकी मुझको लाज नही है।

अधरामृत की उस तह तक मैं
पहुँचा विष को भी चख आया,
और गया सुख को पिछुआता
पीर जहा वह बनकर छाया,

मृत्यु गोद मे जीवन अपनी
अतिम सीमा पर लेटा था,

राग जहा पर तीव्र अधिकतम है, उसमे आवाज़ नही है।
मैं सुख पर, सुखमा पर रीभा, इसकी मुझको लाज नही है।

८२

मैं तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो मागते तुम।

स्नेह, सवेदन, समादर की जरूरत,
कौन ऐसा है, नही महसूस करता,
और कुछ सौभाग्यशाली है कि जिनपर
यह सुखद झरना अचानक फूट पडता,

किंतु मैं हर बूद की कीमत अदा कर चाहता हूँ
लू पलक पर, या अधर पर, या वदन पर,
मै तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो मागते तुम।

ओ' तुम्हारे घर नही जल की कमी है,
पर तुम्हारे अर्घ्य की तब धार बहती,
जब नगर-घर खाक हो जाता किसीका,
जब किसीके सिर न तृण की छाह रहती,

ओ' तुम्हारे अर्घ्य म कितना प्रलोभन
है कि कुछ घर फूक खुद बनते तमाशा,

और जो है आग से संघर्ष करते, होड लेते
भूल करके भी न उनको ताकते तुम।
मै तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो माँगते तुम।

औ' तुम्हारे घर न दीपो की कमी है,
पर तुम्हारी आरती तब है सँवरती,
जब किसीके नेत्र-दिल के दीप बुझते,
जब किसीपर रात अँधियारी उतरती,
औ' तुम्हारी आरती म क्या प्रलोभन
है कि कुछ अपने दिए खुद ही बुझाते,
और जो तम को झगड-लड चूर करते,दूर करते
भूल करके भी न उनको ताकते तुम।
मै तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो माँगते तुम।

सब समझ मैंने लिया, तुमको नही है
खोज उनकी जो कि अधिकारी बने हैं,
स्नेह, सवदन, समादर के, तुम्ह तो
खोज उनकी जो कि लाचारी बने हैं,
जिंदगी की, वक्त की, जिनको कि करुणा
का बनाकर पात्र तुम यश-पुण्य लूटो।
खरियत है, युद्ध मेरे अग्नि-ज्वाला
से, अँधेरे से, जमाने से ठने हैं।

स्नेह सवेदन-समादरणीय वन पाऊँ, न पाऊ,
मै नही दयनीय बनना चाहता हूँ,
साफसौदा यह नही,ग्रपनी दया का मूल्य ज्यादा
ग्रौर मेरे मान का कम ग्राकते तुम।
मैं तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो माँगते तुम।

यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है।

यह कमल की पूर्ण सत्ता
का बडा बारीक सत है,
गानरत की प्राण-ध्वनि है,
या किसी कवि का कवित है,
या कि विरही यक्ष का उच्छ्वास
जिससे मेघदूत प्रसूत होता,
या निमन्त्रण यक्षिणी का
मौन बैठी जो कि अलका मे कही है।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है।

और सुनता यह निमन्त्रण,
और गिरि वन खड करता
पार, आता, गुनगुनाता,
और पकज मे समाता,
नाक तुझको, सूघने की
सूक्ष्मता तुझमे कहा, कीचड-विहारी,
कीट-भक्षी जीभ से मकरद–
मधु को छान तू सकता नही है।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है।

दर्द भुगतने वाला की भी
हमदर्दी को देख चुका हूँ,
मत मेरा मुंह खुलवाओ, मैं
भीतर भीतर बहुत फुंका हूँ,

अब दरकार नहीं है उसको,
काफ़ी मैं एहसान तुम्हारा

मानूगा, अपने हँसने की वस्तु न जा मुझको मानोगे।
लाख देवता तुम हो, मेरी, किंतु, वेदना क्या जानोगे।

नहीं मुझे मालूम कि मेरी
साँसो का यह जो दो-तारा,
इसको कसकर झंकृत करने
में कितना है हाथ तुम्हारा,

है तो, मेरे एक प्रश्न का
उत्तर दे सकते हो ? पूछूं ?

मेरे जीवन की वीणा को और अभी कितना तानोगे ?
लाख देवता तुम हो, मेरी, किंतु, वेदना क्या जानोगे।

८५

मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ।

कामना कुछ प्राप्त करने की हुई तो
प्रथम अधिकारी बना हूँ,
और फिर मैं काल के, ससार के, औ'
भाग्य के आगे तना हूँ,

मैं वहाँ झुककर जहाँ झुकना गलत है,
स्वर्ग ले सकता नहीं हूँ,
मै सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ।

झूठ बुलवाए न जिह्वा, सर्वदा मैंने
नहीं है न्याय पाया,
और थोडी सी अकड से, जानता हूँ,
जो न पाया, जो गँवाया,

योग्यता की पोल म क्या चीज भरकर
कुछ उसे सीधी किए हैं,
रीढ ही जो तोड बैठे होड क्या उनसे लगाऊँ।
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ।

वे कहेंगे क्या, न जिसको साँस मेरी
रात दिन कहती रही है,
झूठ मेरे प्राण की ध्वनि, और उनकी
जीभ की चुलबुल सही है,
जबकि मेरे बोल खुद कहते नहीं हैं
वे हृदय से फूटते हैं,
सिद्ध करने को इसे क्या और से कसमें खिलाऊँ!
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ!

और जब उनकी प्रतिध्वनि ही तुम्हारे
बोल से आती नहीं है,
तो मुझे यह जान लेना चाहिए था
हो रही गलती कहीं है,
घाटियाँ आवाज पर आवाज देतीं
और गलियाँ मौन रहतीं,
चल, अभागे मन, कहीं अब और मैं तुझको रमाऊँ!
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ!

८६

मै सदा ससार मे लडता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।
हूँ नही उन धाकडो मे जो कि अपनी
चाक पर जग को चलाकर हैं बिठाते
धाक अपनी, औ' न उनमे जो जगत के
हुक्मनामा पर ठहरते, पग बढाते,
जो खडे होकर तमाशा देखते हैं,
पूछते हैं क्या हुआ इसका नतीजा,
मैं सदा ससार से लडता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

बाध जो बदूक औ' तलवार फिरते,
बस उन्हे दुनिया सिपाही मानती है,
किंतु बे-हथियार के जो जग करते
ढग उनका वह कहाँ पहचानती है,
युद्ध करते सकडो यो मौन रहकर
और उनका घाव, उनकी चोट, पीडा
जानता कोई नही उनके अलावा,
कुछ मुखरने को मिला है गीत मुझको।

मैं सदा ससार से लडता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

एक दुनिया है हृदय के बीच मे भी
जो किसीको भी नही देती दिखाई,
और इसको जानता कोई नही है
जिस तरह मैंने वहा पर की लडाई,
जो वहाँ पहनी फतह की फ़लमाला,
जो वहा गिरकर धरा की धूल—चाटी,
है मुझे फूला नही देखा विजय ने
औ' पराजय ने नही, भय-पीत मुझको।
मैं सदा ससार से लडता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

कौन कहता है कि आधी रात को मै
बैठ शब्दो के तुकों को जोडता हूँ,
भावना के भेद को जो हैं दबाए
सत्य मे, उन पत्थरो को तोडता हूँ,
आग निकले या कि जल की धार निकले,
राग मधुमय या करुण चीत्कार निकले,
चीर कर जो सग की छाती निकलती
है विकलता, बस वही सगीत मुझको।
मैं सदा ससार से लडता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

८७

श्रौर, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे।
आसमानी इस प्रलोभन मे, बता तो,
क्या अनोखा, क्या नया है,
जो कि इसको लोकने को लोभियो का
आज मेला जुड गया है,
छोड इनसे, जोड इनके साथ करने
की नही तुझको जरूरत,
श्रौर, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे।

है बडा अचरज कि नर ने किस तरह फिर
वानरी आकार पाया,
रीढ जो थी की गई सीधी, मनुज ने
किस तरह उसको झुकाया,
आज तू अपवाद बनकर बैठ जिससे
सिद्ध फिर ससार मे हो,
फिर पडी होती नही है जो कि अपने
से खडी होती लकीरें।

और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे !

और ये जितने उछलते कूदते हैं
क्या सभी कुछ पा रहे है ?
कुछ न पाएं, पर जमाने की नजर मे
तो उभरते आ रहे हैं,
जो कि अपने को दिखाते घूमते हैं,
देखते खुद को कहा है,
और खुद को देखनेवाली नजर
नीचे सदा रहती गडी, रे !
और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे गँभीरे !

और इस हल्की हवा फुल्की सतह पर
दीखता उडता हुआ जो,
या कि है कीडा मकोडा, या कि रजकण,
या कि जो तिनका, भुआ जो,
दांत से इनको पकडकर कुछ बडे खुश
हो रहे हैं, पर तुझे तो
सिर्फ लेना है अतल गहराइयो से
ठीकरे हो या कि हीरे !
और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे !

८८

तेरे मन की पीर ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।
नीलम-नील महल के ऊपर
मणि-दीपों की माला,
गया अतर कर क्या तुझपर भी
वैभव का उजियाला।

अतर आभावाले, तेरी
क़द्र वहाँपर क्या है।
नीचे का पानी रस, रस के अंदर अमृत धारे।
तेरे मन का मोल ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।
उच्चासन आसीन भले ही
तुझे दुआएँ दे ले,
गो ज्यादा संभव है तेरी
किस्मत से वे खेलें,

ताज पिन्हा दें तो भी, होगा
ठुकराई किरणों का,
जल की बूंद प्रतीक्षा में है, तेरे पाँव पखारे।
तेरे मन का मान ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।
जड़ता के इस चाकचक्य पर
आँख सभी की जाती,

किंतु किसीने इसके पीछे
सुनी धडकती छाती ?

यह पानी की बूंद पखुरियों
की सांसो पर हिलती,
यह अपनी पुतली मे सारे नभ का दर्द सँवारे।
तेरे मन का भार ओसकण समझेंगे, न कि तारे।

चमक-दमक या तडक-भडक को
समझ न अतर्ज्वाला,
नही हुआ करता हर जलने-
वाला गलनेवाला,

गले ढले ही जले हुओं की
पीर परख पाते हैं,
इन जल तन वालो ने जाने हैं मन के अगारे।
तेरे मन का ताप ओसकण समझेंगे, न कि तारे।

आदि काल से पृथ्वी का दुख-
ताप उन्होने देखा,
किन्तु नही उनके आनन पर
पडी एक भी रेखा,

इन बूदो पर एक-एक क्षण-
कण की कसक सिसकती,
व्यथा-कथा ससृति की छूते इनके कोर-किनारे।
तेरे मन की पीर ओसकण समझेंगे, न कि तारे।

८९

तारा का सारा नभ-मडल, आँसू का नयना का घेरा।
एक दिवस यह आज़ादी थी—
जल-कण लू, या रत्न गगन का
क्षण न लगा मुझको निर्णय म,
मालिक था मैं अपने मन का,
अपना भाग्य चुना जब मैंने
तब भी यह मालूम मुझे था—
तारा का सारा नभ-मडल, आँसू का नयनो का घेरा।

ठीक पसद सदा थी मेरी—
कब मैंने दावा दिखलाया,
एक बडी सूची है उनकी
जिनको अपनाकर पछताया,
फूला के ऊपर भी आया,
शूलो के ऊपर भी आया,
किंतु कभी भी अब तक मैंने आँसू का उपहार न फेरा।
तारो का सारा नभ-मडल, आसू का नयनो का घेरा।

तारो की आभा म ऐठा
वठा लगता है अभिमानी,
आखो के पानी मे झलका
करती जग की दद-कहानी,

एक वूद से भी दुनिया का
ताप वहुत कुछ मिट जाता है,

लाखो तारे कर पाते है किसके घर का दूर अँधेरा।
तारो का सारा नभ-मडल, आसू का नयना का घेरा।

पलको के भरते ही अतर
लेने लगता है हलकोरे,
अतर के हलकोरो ने ही
वे सब कूल कगारे तोडे,

वोरे, जो मानव-मानव के
वोच वनाते है सीमाएँ,

और उन्हीके ऊपर चलता आया है भावो का वेडा।
तारो का सारा नभ मडल, आसू का नयनो का घेरा।

९०

उम्र ही मेरी चुकी है वीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।
शाप मेरा था वडा सवसे, कि अपने
साथ में था स्वप्न लाया,
और बिगडी आदता की आंख को जब
सत्य जगती का न भाया,

तब सिवा विद्रोह करने के नही था
और कोई पास चारा,
उम्र ही मेरी चुकी है वीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।
औ' ग़लत या ठीक समझो, अस्त्र अपना
शब्द को मैंने चुना था,
क्रातिकारी, पूर्व मेरे भी, इसीसे
लड चुके थे, यह सुना था,

तब नही था ज्ञान इनपर शान रखने
की हुआ करती जरूरत,
धार इनको दे वही पाते इन्हे जो है कलेजे से रगडते।
उम्र ही मेरी चुकी है वीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

और मेरे साथ बहुतो ने शुरू की
थी ज़माने से लडाई,
किंतु उनकी ही ज़बाने गा रही है
आज उसकी गुण-बडाई,

और मै ससार से आरभ करके
साथ अपने लड रहा हूँ,

दो विरोधी शत्रु मुझमे सवदा से है रहे दबते-उभरते।
उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

हूँ न उनमे जो उदर के औ' कमर के
बीच मे मस्तिष्क पाए,
औ' न उनमे, जो कि दुनिया से परे हो
इश्क मस्ताना लगाए,

आदमी हूँ, दम्भ इसका है, बना हूँ
देवता-पशु का रणस्थल,

और तै है श्वान करते सधि जीवन से कि पहुँचे सत करते।
उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

९१

गूजा करते है जो तरे अतमन मे,
उनमे कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?
निर्जन पवत पर वहनेवाला निझर जो
सगीत शिलाखडा के बीच सुनाता है,
वह इसे पूछने को कब रमता-थमता है,
कोई उसको सुनता-गुनता, अपनाता है,
'स्वात सुखाय', फिर, तुलसी गाया करते हैं,
मुझसे तो यह साधना वरी जा सकी नही,
इतनी जडता के ऊपर, इतनी चेतनता
के नीचे, मुझको प्रश्न सदा अकुलाता है–
गूंजा करते हैं जो तेरे अतर्मन मे,
उनमे कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?
पर्वत, घाटी, सरिता के तट से, खँडहर से
मेरे रागा की प्रतिध्वनियाँ तो आती हैं,
दपण में दिखलाई पडनेवाली छाया
किसके तन का एकाकीपन हर पाती है ?
हूबहू नकल करके वे मेरे लहजा का
उपहास नही करती हैं, तो क्या करती हैं ?

जो उनके उत्तर म उभरे, सिहरे, धडके,
मै पूछ रहा हूँ, क्या ऐसी भी छाती है ?

जो तू दुहराती कडी अकेली साभो को,
उनमे कोई टूटा आखर मेरा भी है ?
गूजा करते हैं जो तेरे अतमन मे,
उनम कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?

कितनो ने अपने मन के महल ढहाए हैं
तेरा राजप्रासाद खडा हो अवर म,
कितनो ने अपने घर के दीप बुझाए हैं
जगमग-जगमग हर कोना हो तेरे घर मे,

कितनो ने अपने जी के बाग उजाडे हैं
फूलो से तेरी सेज सजे सतखडे पर,

मेरी सारी पूजी कुछ मुखरित सपने थे,
अपनी तनहाई की अलसाई भुरहर[1] मे

तू याद जगा जिनकी अँगडाई लेती है,
उनमे कोई सोया खडहर मेरा भी है ?
गूजा करते है जो तेरे अतमन मे,
उनम कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?

---

[1] (अवधी) भोर, सुबह।

९२

माना मैंने मिट्टी, कंकड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै बाज़ रहा।
दपरण से अपनी चापलूसियाँ सुनने की
सबको होती है, मुझको भी कमजोरी थी,
लेकिन तब मेरी कच्ची गदहपचीसी थी,
तन कोरा था, मन भोला था, मति भोरी थी,
है धन्यवाद सौ बार विधाता का जिसने
दुबलता मेरे साथ लगा दी एक ओर,
माना मैंने मिट्टी, कंकड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मैं बाज रहा।

धरती से लेकर, जिसपर तिनके की चादर,
अंबर तक, जिसके मस्तक पर मणि-पाती है,
जो है, सबमे मेरी दयमारी आंखो को
नय करनेवाली कुछ बातें मिल जाती है,
खुलकर, छिपकर जो कुछ मेरे आगे पडता
मेरे मन का कुछ हिस्सा लेकर जाता है,
इस लाचारी से लुटने और उजडनेवाली
हस्ती पर मुझको हर लमहा नाज रहा।

माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै वाज़ रहा।

यह पूजा की भावना प्रवल है मानव मे,
इसका कोई आधार वनाना पडता है,
जो मूर्ति और की नही विठाता है अदर,
उसको खुद अपना वुत विठलाना पडता है,
यह सत्य, कल्पतरु के अभाव मे रेंड सीच
मैंने अपने मन का उद्‌गार निकाला है,
लेकिन एकाकी से एकाकी घडियो मे
मैं कभी नही वनकर अपना मोहताज रहा।
माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै वाज रहा।

अव इतने ईंटे, ककड, पत्थर वैठ चुके,
वह दर्पण टूटा, फूटा, चकनाचूर हुआ,
लेकिन मुझको इसका कोई पछताव नही
जो उनके प्रति ससार सदा ही क्रूर हुआ,
कुछ चीजे खडित होकर सावित होती हैं,
जो चीजे मुझको सावित सावित करती है,
उनके ही गुण तो गाता मेरा कठ रहा,
उनकी ही धुन पर वजता मेरा साज रहा।
माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै वाज रहा।

९३

दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।
लहराया है दिल तो ललका
जा मधुबन में, मैदानों में,
बहुत बड़े वरदान छिपे हैं
तान, तराना, मुसकानों में,
घबराया है जी तो मुड़ जा
सूने मरु, नीरव घाटों में,
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

किसके सिर का बोझा कम है
जो औरों का बोझ बँटाए,
होठों के सतही शब्दों से
दो तिनके भी कब हट पाए,
लाख जीभ में एक हृदय की
गहराई को छू पाती है,
कटती है हर एक मुसीबत—एक तरह बस—झेले झेले।
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

छुटकारा तुमने पाया है,
पूछूं तो, क्या कीमत देकर,
कर्ज चुका आए तुम अपना,
लेकिन मुझको ज्ञात कि लेकर

दया किसीकी, कृपा किसीकी,
भीख किसीकी, दान किसीका,

तुमसे सौ दर्जे अच्छे वे जो अपने वचन से खेले।
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

जंजीरों की झनकारों से
है वीणा के तार लजाते,
जीवन के गंभीर स्वरों को
केवल भारी हैं सुन पाते,

गान उन्हींका मान जिन्हें है
मानव के दुख-दर्द-दहन का,

गीत वही बाँटेगा सबको, जो दुनिया की पीर सकेले।
दे मनका उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

६४

मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।
वह पट ले आई, बोली, देखो एक तरफ,
जीवन-ऊषा की लाल किरण, बहता पानी,
उगता तरुवर, खर चोंच दबा उडता पछी,
छूता अंबर को धरती का अंचल धानी,
दूसरी तरफ है मृत्यु-मरुस्थल की संध्या
में राख धुएँ में धँसा हुआ कंकाल पडा।
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

ऊषा की किरणों से कंचन की वृष्टि हुई,
बहते पानी मे मदिरा की लहरें आईं,
उगते तरुवर की छाया मे प्रेमी लेटे,
विहगावलि ने नभ मे मुखरित की शहनाई,
अंबर धरती के ऊपर बन आशीष झुका
मानव ने अपने सुख-दुख मे, संघर्षों मे,
अपनी मिट्टी की काया पर अभिमान किया।
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

मैं कभी, कही पर सफर खत्म कर देने को
तैयार सदा था, इसमे भी थी क्या मुश्किल,
चलना ही जिसका काम रहा हो दुनिया मे
हर एक कदम के ऊपर है उसकी मज़िल,
जो कल पर काम उठाता हो वह पछताए,
कल अगर नही फिर उसकी किस्मत म आता,
मैंने कल पर कब आज भला वलिदान किया।
मैने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

काली, काले केशो मे काला कमल सजा,
काली सारी पहने चुपके-चुपके आई,
मैं उज्ज्वल-मुख, उजले वस्त्रो मे बैठा था
सुस्ताने को, पथ पर थी उजियाली छायी,
'तुम कौन ? मौत ? मै जीने की ही जोग-जुगत
म लगा रहा।' बोली, 'मत घवरा, स्वागत का
मेरे, तूने सबसे अच्छा सामान किया।'
मैने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

९५

ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

था ज्ञात मुझे भी, तुझको भी
आया हूँ जाने को,
कुछ वक्त मिला था मुझको गाने,
गीत सुनाने को,
कुछ अपने सूने पथ, कुछ तेरी
सूनी घडियो को,
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

जब प्रात विहगम-भँवर धरणि
को जाग जगाएँगे,
जब रात गगन के तारे मिलकर
लोरी गाएँगे,
तब उनके कठो मे मेरा भी
कठ मिला होगा,
मै एक स्वरो का नाता सबसे जोडे जाता हूँ।
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

हर किरण-कली-तितली तिनके
पर मैं हूँ बलिहारी,
है मुझको प्यारे इस दुनिया के
सब नर, सब नारी,

वधन कोई भी बांध नहीं
मुझसे तोडा जाता,
खुद मुझको अचरज क्यों सबसे मुँह मोडे जाता हूँ।
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

मेरे रथ मे सूरज-चदा के
चक्के है जोडे,
हैं खीच रहे जिसको अबर से
नव ग्रह के घोडे,

है कोडे और लगाम काल के
निमम हाथो मे,
मै इस धरती को छोड सहज ही थोडे जाता हूँ?
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

९६

मैंने ऐसा कुछ कवियों से सुन रक्खा था
जब घटनाएं छाती के ऊपर भार बनें,
जब सांस न दिल को लेने दें आज़ादी से
टूटी आशाओं के खंडहर, टूटे सपने,
तब अपने मन की बेचैनी को छंदों में
संचित कर कोई गाए और सुनाए तो
वह मुक्त गगन में उड़ने का सा सुख पाता।
लेकिन मेरा तो भार बना ज्यों का त्यों है,
ज्यों के त्यों बंधन हैं, ज्यों की त्यों बाधाएँ,
मैंने गीतों को रचकर के भी देख लिया।

'वे काहिल हैं जो आसमान के परदे पर
अपने मन की तस्वीर बनाया करते हैं,
कमठ उनके अंदर जीवन की सासें भर
उनको नभ से धरती पर लाया करते हैं।'
आकाशी गंगा से गन्ना सींचा जाता,
अंबर का तारा दीपक बनकर जलता है,
जिसके उजियारे बैठ हिसाब किया जाता।

उसके जल म अब ख्याल नही वहते आते,
उसके दृग से अब झरती रस की बूद नही,
मैंने सपना का सच करके भी देख लिया।

यह माना मैंने खुदा नही मिल सकता है
लदन की धन-जोवन-गर्वीली गलियो म,
यह माना उसका ख्याल नही आ सकता है
पेरिस की रसमय रातो की रगरलियो म,
जो शायर को है शानेखुदा उसम तुमको
शतानी गोरखधधा दिखलाई देता,
पर शेख, भुलावा दो उनको जो भोले है।
तुमने कुछ ऐसा गोलमाल कर रक्खा था,
खुद अपने घर मे नही खुदा का राज मिला,
मैंने कावे का हज करके भी देख लिया।

रिंदो ने मुझसे कहा कि मदिरा पान करो,
गम गलत इसीसे होगा, मैंने मान लिया,
मैं प्याले मे डूवा, प्याला मुझमे डूवा,
मित्रो ने मेरे मसूवे को मान दिया।
वदा ने मुझसे कहा कि यह कमजोरी है,
इसको छोडो, अपनी इच्छा का वल देखो,
तो ला, मैंने उनका कहना भी कान किया।
मै वही, वही पर गम हैं, दुर्वलताएँ हैं,
मैंने मदिरा को पीकर के भी देख लिया,

मैंने मदिरा को तज करके भी देख लिया।
मैंने काबे का हज करके भी देख लिया।
मैंने सपनों को सच करके भी देख लिया।
मैंने गीतों को रच करके भी देख लिया।

उसके जल मे अब ख्याल नही बहते आते,
उसके दृग से अब झरती रस की बूंद नही,
मैंने सपना को सच करके भी देख लिया।

यह माना मैंने खुदा नही मिल सकता है
लदन की धन जोबन-गर्वीली गलियो मे,
यह माना उसका ख्याल नही आ सकता है
पेरिस की रसमय रातो की रगरलियो मे,
जो शायर को है शानेखुदा उसमे तुमको
शतानी गोरखधधा दिखलाई देता,
पर शेख, भुलावा दो उनको जो भोले हैं।
तुमने कुछ ऐसा गोलमाल कर रक्खा था,
खुद अपने घर मे नही खुदा का राज़ मिला,
मैंने कावे का हज करके भी देख लिया।

रिंदा ने मुझसे कहा कि मदिरा पान करो,
गम गलत इसीसे होगा, मैंने मान लिया,
मैं प्याले मे डूबा, प्याला मुझमे डूबा,
मित्रो ने मेरे मसूबे को मान दिया।
वदा ने मुझसे कहा कि यह कमज़ोरी है,
इसको छोडो, अपनी इच्छा का बल देखो,
तो ला, मैंन उनका कहना भी कान किया।
मैं वही, वही पर गम हैं, दुर्बलताएँ हैं,
मैंने मदिरा को पीकर के भी देख लिया,

मैंने मदिरा को तज करके भी देख लिया।
मैंने काबे का हज करके भी देख लिया।
मैंने सपनों को सच करके भी देख लिया।
मैंने गीतों का रच करके भी देख लिया।

९७

रात की हर सांस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

दिवस का मुझपर नही अब
कर्ज बाकी रह गया है,
जगत के प्रति भी न कोई
फर्ज बाकी रह गया है,
जा चुका जाना जहा था,
आ चुके आना जिन्हे था,
इस उदासी के अँधेरे मे बता, मन,
कौन आकर मुसकराएगा?
रात की हर सास करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

'वह, कि जो अदर स्वय ही
आ सकेगा खोल ताला,
वह, भरेगा हास जिसका
दूर कोनो म उजाला,

वह, कि जो इस ज़िंदगी की
चीख और पुकार को भी
एक रसमय रागिनी का रूप दे दे,
एक ऐसा गीत गाएगा।'
रात की हर सास करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

मौन पर मैं ध्यान इतना
दे चुका हूँ बोलता सा
जान पड़ता, औ' अँधेरा
पुतलियाँ दो खोलता-सा,
लाल, इतना घूरता मैं
एकटक उसको रहा हूँ,
पर कहाँ सगीत है वह, ज्योति है वह
जो कि अपने साथ लाएगा?
रात की हर सास करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

और बारबार मै बलि-
हार उसपर जो न आया,
औ' न आने का समय दिन
ही कभी जिसने बताया,
और आधी ज़िंदगी भी
कट गई जिसको परखते,

किंतु उठ पाता नहीं विश्वास मन से—
वह कभी चुपचाप आएगा।
रात की हर सांस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा।

९८

ओ भोले, दिग्भ्रात बटोही,
एक रास्ता अब भी है।

'इस पथ पर लुढका तो बस
पाताल पुरी मे ठहरेगा।'
'इसपर बढता तो चट्टानो
से पग-पग टक्कर लेगा।'
'जगल की इस भूल-भुलैया
मे फँस कोई निकला है?'
'वैतरनी जो पार करेगा
पहले, इसको तैरेगा।'
ताड-वृक्ष के ऊपर बैठा
वृद्ध गृद्ध यह कहता है—
'ओ भोले, दिग्भ्रात बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'

छुडा लिए कुछ गए और कुछ
खुद ही मुझको छोड चले,
मैने भी उनसे मुँह मोडा
जो मुझसे मुँह मोड चले,

कुछ का साथ निभाना मेरी
रुचि के, बस के बाहर था।
अच्छा है, इस पथ का पथी
सारे बंधन तोड चले।
तरु-कोटर के अंदर बैठा
अंधा उल्लू कहता है—
'उन टूटे रिश्ता से तेरा
एक वास्ता अब भी है।'
'ओ भोले, दिग्भ्रांत बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'

सुनी कहानी, कही कहानी,
स्वयं कहानी एक बना,
चौथी बात किया करता है
क्या कोई संसार-जना ?
कोई पूरी होती, कोई
सिर्फ अधूरी रह जाती।
सुख, दुख, दुविधा छोड किसीका
अंत हुआ किसम, कहना ?
एक डाल पर बैठा कागा
आंख घुमाकर कहता है—
'जिसका भेद समझना तुझको
एक दास्ता अब भी है।'

'ओ भोले, दिग्भ्रांत बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'

'उन टूटे रिश्तों से तेरा
एक वास्ता अब भी है।'

'जिसका भेद समझना तुझको
एक दास्ताँ अब भी है।'

६६

यह जीवन ग्रो' ससार ग्रधूरा इतना है,
कुछ बे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

तुम जिस लतिका पर फूली हो, क्यो लगता है,
तुम उसपर ग्राज पराई हो ?
मै ऐसा ग्रपने ताने-बाने के ग्रदर
जैसे कोई बलवाई हो।

तुम टूटोगी तो लतिका का दिल टूटेगा,
मै निकलूगा तो चादर चिरवत्ती होगी।

यह जीवन ग्रो' ससार ग्रधूरा इतना है,
कुछ बे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

पर इष्ट जिसे तुमने माना, मैने माना,
माला उसको पहनानी है,
जिसको खोजा, उसकी पूजा कर लेने म
हो जाती पूर्ण कहानी है,

तुमको लतिका का मोह सताता है, सच है,
ग्राता है मुझको बडा रहम इस चादर पर,

निर्माल्य देवता का बनने का व्रत लेकर
हम दोनो मे से तोड नही सकता कोई।

यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ वे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई ।

हर पूजा कुछ बलिदान सदा मांगा करती,
लतिका का मोह मिटाना है,
हर पूजा कुछ विद्रोह सदा चाहा करती,
इस चादर को फट जाना है ।
माला गूथी, देवता खडे है, पहनाएँ,
उनके अधरा पर हास, नयन मे आँसू हैं ।
आरती देवता के मुसकानो की लेकर
यह अघ्य दृगो का छोड नही सकता कोई ।
यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है
कुछ वे तोडे कुछ जोड नहीं सकता कोई ।

तुमने किसको छोडा ? सच्चाई तो यह है,
कुछ अपनापन ही छूट गया ।
मैंने किसको तोडा ? सच्चाई तो यह है,
कुछ भीतर-भीतर टूट गया ।
कुछ जोड हमे भी जाएंगे, कुछ तोड हमे
भी जाएंगे जब बनने को वे सोचेंगे,
पर हम-से ही वे छूटेंगे, वे टूटेंगे,
जग-जीवन की गति मोड नही सकता कोई।
यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ वे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

१००

मै अभी ज़िंदा, अभी यह
शव परीक्षा मै तुम्हे करने न दूगा।

देखता हूँ तुम सफेद नकाब
सिर से पांव तक डाले हुए हो,
क्या कफन को ओढने से
मर गए तुम लोग ! मतवाले हुए हो ?
नश्तरो की रौ लगी है,
मेज़ मुर्दो को लेटाने की पडी है।
मै अभी ज़िंदा, अभी यह
शव परीक्षा मै तुम्हे करने न दूगा।

आख मेरी आज भी मानव-
नयन की गूढतर तह तक उतरती,
आज भी अन्याय पर
अगार बनती अश्रुधारा मे उमडती
जिस जगह इसान की
इसानियत लाचार उसको कर गई है।
तुम नही यह देखते तो
मैं तुम्हारी आंख पर अचरज करूंगा।

मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा मैं तुम्हे करने न दूंगा।

आज भी आवाज़ जो मेरे
कलेजे से, गले से है निकलती,
गूंजती कितने गलों में
और कितने ही दिलों में है मचलती,
मौन एकाकी पलों का
भंग करती, औ' मिलन में एक मन को
दूसरे पर व्यक्त करती,
चुप न होगी, जबकि मैं भी मूक हूँगा।
मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा, मैं तुम्हें करने न दूंगा।

आज भी जो सांस मुझमें
चल रही है वह हवा भर ही नहीं है,
है इसीकी चाल पर
इतिहास चलता और संस्कृति चल रही है,
और क्या इतिहास, क्या संस्कृति,
कि जीवन में मनुज विश्वास रक्खे,
मैं इसी विश्वास को हर
सांस से कहता रहा, कहता रहूँगा।
मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा मैं तुम्हें करने न दूंगा।

कागजों की भी नकावें
डालकर इंसानियत कोई छिपाते,
कागजा के भी कफन को
ओढ कोई धडकनें दिल की दवाते,
शव परीक्षा के लिए
तैयार जो हैं शव प्रथम वे वन चुके हैं,
किंतु मेरे स्वर निरर्थक,
हैं, अगर वे हैं न पर्दों को हटाते,
हैं न दिल का खटखटाते,
हैं न मुर्दों को हिलाते औ' जगाते।
मै अभी मुर्दा नही हूँ,
और तुमको भी अभी मरने न दूगा।
मैं अभी जिंदा, अभी यह
शव परीक्षा मैं तुम्हे करने न दूगा।

विलियम बट्लर ईट्स के प्रति

[टिप्पणी]

विलियम बटलर ईट्स (१८६५-१९३९) के नाम से इस देश के लोग अपरिचित नही है। उन्होने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गीताजलि के अग्रेजी अनुवाद की पक्ति-पक्ति सुधारी थी, प्रकाशन मे सहायता दी थी, और उसकी भावमयी भूमिका भी लिखी थी।

ईट्स ने १९वी शताब्दी के अतिम दशक म काव्य क्षेत्र म प्रवेश किया, जो अग्रेजी साहित्य के इतिहास मे ह्रास युग (डिकेडेन्ट पारियड) के नाम से प्रसिद्ध है। यह वाल्टर पेटर और आस्कर वाइल्ड के 'कला कला के लिए' सिद्धात का युग था। अपने समकालीन कवियो मे केवल ईट्स ही ऐसे निकले जो युग की अस्वस्थ प्रवृत्तियो से सघर्ष कर ऊपर उठे और अपने जीवन के अत तक अपने समय के सबसे बड़े और प्रतिनिधि कवि माने जाते रहे।

इसका कारण यह था कि ईट्स को आयरलैंड के पुनर्जागरण से प्रेरणा और शक्ति मिली थी। प्राणवान साहित्य जातियो के प्राणमय जीवन और इतिहास से ही उद्भूत होता है। उन्होने आयरलैंड के राष्ट्रीय आदोलन को अपनी कृतियो से बल और सबल प्रदान भी किया था।

उनकी लेखनी लगभग पचास वर्ष तक अनवरत चलती रही। उनकी आँखो ने स्वप्न और सत्य दोनो की दुनिया देखी और दोनो को निर्भीक वाणी दी।

स्वस्थ साहित्य के पीछे किसी स्वस्थ धर्म, दर्शन अथवा आस्था की आवश्यकता में उनका दृढ विश्वास था। पर इस युग म विज्ञान ने तर्क, सदेह और शका के विस्फोटो से इन मान्यताओ के समय सिद्ध प्रासादो को जैसे नीव से उडा दिया था। किसी परपरा की खोज और स्थापना

प्रयत्न म इटस ने कहा कहा की खाक नही छानो । प्राचीन यूनान और मिस्र के विचारक, मध्यकालीन योरोपीय कीमियागर, यहूदियो का 'कब्बाला', भारतीय दशन, रहस्यवादी जैकब बहमेन और स्वीडेनबाग, मदाम ब्लवेटस्की की थियोसोफी—क्या-क्या उनको खोज के विषय नही रहे।

इस अध्यवसाय म वे यहूदियो के 'कब्बाला स विशेष प्रभावित हुए, जिसके जीवन दशन का मुख्याश साप और तीर के रूपक से अभिव्यक्त होता है—साप जिसकी गति गोलाकार होती है और तीर जो सीध जाता है। इट्स ने इन दोनो को अपन ढग से तितली और बाज की गति मानी है। जिस समय म डबलिन में ईट्स के पुस्तकालय मे उनकी पाडुलिपियो का निरीक्षण कर रहा था, एक दिन ईट्स की विधवा पत्नी जाज ईटस सहसा मेरे पास आई। एक डिब्बी स उन्होने एक अँगूठी निकाली। उसके ऊपर तितली और बाज की आकृतिया बनो थी। श्रीमती ईटस ने बताया कि उनके पति इसे अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठा में पहना करते थे। उन्होने जिद की कि म उसे पहनू। और जब मैंने पहन ली तो बोली, 'यह तुमको बिल्कुल ठीक आई बिलो (विलियम) की कनिष्ठा बिल्कुल तुम्हारी जसी थी। मैं किन भावो म उस समय डूब गया बताना कठिन है।

केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी मे पी एच० डो० का जो थीसिस मने प्रस्तुत की, उसका विषय था 'ईटस का तन्त्रवाद । इसके लिए मुझे उनकी कविताओ को आलोचक की तक-बुद्धि से पढना पडा और मने कुछ नई बाते खोज निकाली। पर सहृदय पाठक की सवेदनशीलता से मन उनसे आनद ही अधिक उठाया। इन दोना क्रियाओ का सामजस्य करना रेखा और वृत्त मे सामजस्य करने के समान था। इसके लिए मन एक नए रूपक का उपयोग किया है—माझी और तराक का। शेष बाते कविता से स्पष्ट होगी।

यह टिप्पणी इस आशा से लिखो गई है कि इसके द्वारा ईटस पर लिखी मेरी रचना आसानी से समझी जा सकेगी।

० ० ०